काव्य-कला

[होरेस]

सरक्षक—डा० वी० के० आर० वी० राव

सम्पादक-मण्डल

प्रो० सैमुएल मथाई, डा० (श्रीमती) एच० पी० दस्तूर
प्रिंसिपल बगालीभूषण गुप्त, डा० सरूपसिंह
डा० (श्रीमती) सावित्री सिन्हा, श्री महेन्द्र चतुर्वेदी

डा० नगेन्द्र (संयोजक)

प्रधान-सम्पादक
डा० नगेन्द्र

सम्पादक
श्री महेन्द्र चतुर्वेदी

रूपान्तरकार
डा० रांगेय राघव श्री महेन्द्र चतुर्वेदी

हिन्दी-विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली–८

अनुक्रम

सम्पादकीय वक्तव्य—

होरेस-कृत 'काव्य-कला' हमारी अनुवाद-सयोजना के वर्ग २—पाश्चात्य काव्यशास्त्र—के अन्तर्गत दूसरा प्रकाशन है। इस ग्रन्थ मे रोमी आचार्य-कवि होरेस की 'आर्स पोयतिका' का पद्य और गद्य में अविकल अनुवाद प्रस्तुत किया गया है।

काव्य-कला को सेट्सबरी ने 'साधारण मेधा (के व्यक्ति) की कृति' कहा है। इसमे सदेह नही कि 'काव्य-कला' मे काव्य के आधारभूत तत्वो का गहन-सूक्ष्म विवेचन-विश्लेषण नही मिलता—किन्तु इसका कारण कदाचित् यह है कि मूलतः कवि होने के नाते उनमे अरस्तू जैसी विश्लेषण प्रतिभा न थी, दूसरे प्रस्तुत रचना का मूल रूप पत्रात्मक था। परन्तु होरेस अत्यन्त सजग व्यवहार-बुद्धि से सम्पन्न थे—इसीलिए उनके विवेचन ने परवर्ती कवियो और साहित्य-चिन्तको को निरन्तर प्रभावित किया हे। उनकेविचार आज की परिस्थितियो के सन्दर्भ मे भी अपना विशिष्ट महत्त्व रखते हैं। उन्होने निर्भ्रान्त शब्दो मे साहित्य के दो उद्देश्यो की प्रतिष्ठा की है, नैतिक शिक्षा और आनन्द तथा अन्तत इन दोनो के सम्यक् समन्वय पर जोर दिया है। कवि-मानस मे अर्थ-मोह की उन्होने स्पष्ट गर्हणा की है। सब मिला कर, पाश्चात्य काव्य-चिन्तन का विकास समझने के लिए होरेस के अध्ययन की महत्ता निर्विवाद है—और इस दृष्टि से हमारी विनम्र धारणा है कि प्रस्तुत अनुवाद हिन्दी के एक अभाव की पूर्ति करता है।

इस कृति के प्रकाशन के अवसर पर हम सबसे पहले अपनी सयोजना के सरक्षक डा० वी०के०आर०वी० राव तथा सम्पादक मण्डल के विद्वान सदस्यो के प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन करना अपना कर्त्तव्य समझते हैं। योजना की सफलता इनके प्रेरणा-प्रोत्साहन और सहयोग का ही फल है। काव्य-कला के पद्यानुवाद के लिए हम हिन्दी के बहुमुखी-प्रतिभा-सम्पन्न साहित्यकार डा० रागेय राघव के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं जिन्होने हमारे अनुरोध की रक्षा करते हुए यह दुष्कर कार्य पूर्ण किया है। उनकी प्रतिभा मौलिक सृजन के समान ही अनुवाद के क्षेत्र मे भी सफल रही है—काव्य-कला का पद्यानुवाद इसका

प्रमाण है। भूमिका मे होरेस के कृतित्व का इतना स्वच्छ एव विशद विश्लेषण करने का श्रेय हमारे भूतपूर्व सहयोगी डा० मोहनलाल, अध्यक्ष, अग्रेजी विभाग, गवर्नमेंट कालिज, ज्ञानपुर को है—उनके प्रति भी हम आभार प्रदर्शित करते हैं। किरोडीमल कालिज, दिल्ली के अग्रेज़ी प्राध्यापक श्रीराजकुमार कोहली ने अनुवाद में यथास्थान सशोधन के सुझाव दिये है तथा सन्दर्भ-टिप्पणियो मे सहायता दी है—हिन्दी विभाग के प्रति उनका सहज सौहार्द है . हम उनके प्रति हृदय से कृतज्ञ हैं।

भूमिका

जीवन वृत्त

होरेस [६५ ई० पू०—८ ई० पू०] रोमी काव्य की अमर विभूति हैं। रोमी कवियो मे वर्जिल के बाद उनका ही नाम आदर के साथ लिया जाता है। उनका जन्म जुलियस सीजर के ब्रिटेन-आक्रमण के दस वर्ष पूर्व हुआ। उनके पिता एक साधारण श्रेणी के व्यक्ति थे, किन्तु उनके हृदय मे इस बात की तीव्र इच्छा थी कि होरेस को अच्छी शिक्षा मिले। अत उन्होने अपने छोटे से शहर वेनुजिया से परे रोम में होरेस की शिक्षा दीक्षा का प्रबन्ध किया, जहाँ पद-लोलुप वातावरण की अपेक्षा उदार अध्ययन-अध्यापन उपलब्ध हो। रोम से होरेस अथेन्स गये। अथेन्स यूनान का ही नही, सारे पश्चिम का सस्कृति-केन्द्र था। होरेस ने अपने अथेन्स-वास का कोई विवरण नही छोडा है, किन्तु इसमे कोई सन्देह नही कि यूनानी काव्य, दर्शन और सस्कृति से वे विशेष प्रभावित हुए। उनकी कविताओ मे तथा उनके काव्यालोचन मे यूनानी विचारो की अनेकविध प्रतिध्वनि है। वे अथेन्स में ही थे जब कि सीजर के कत्ल के कारण रोम मे साम्राज्यवादियो और गणतन्त्रवादियो के बीच प्रबल तनातनी पैदा हो गयी थी। युवक होरेस की सहानुभूति गणतन्त्र के साथ थी। फिलिपी के युद्ध [४२ ई० पू०] में उन्होने भाग भी लिया, जिसमें उनके पक्ष की पराजय हुई। विजेताओ ने जब सार्वजनिक रूप से क्षमा-घोषणा की तब वे रोम लौटे, किन्तु वे विपदाओ से घिरे हुए थे। पैतृक सम्पत्ति गणतत्र का साथ देने के कारण वे खो बैठे थे। मित्रो का साथ न था। सकट और अभाव शेष थे। कविता जीवन का सबल बनी।[1]

होरेस को कविता ने ख्याति दी। रोम के प्रतिष्ठित कवियो—वर्जिल, वेरियस, असीनियस पोलियो से उनका सम्बन्ध हुआ। प्रसिद्ध काव्य-प्रेमी मीसिनस से उनका परिचय हुआ, जिनके द्वारा वे सम्राट् आगस्तस के भी कृपा-पात्र हो सके। सम्राट् ने उन्हे राज्य मे एक सचिव का पद भी देना चाहा

---

१ काव्य पत्र २, 11 ,५१

जो कवि को स्वीकार न हुआ। मीसिनस ने तीबर नदी के उत्तर-पूर्व सेविन पर्वत-श्रेणियो के बीच होरेस को एक जागीर दी, जहाँ कवि ने अपने जीवन के अंतिम वर्ष बिताए। दाम्पत्य-जीवन के उत्तरदायित्व से मुक्त, आजन्म अविवाहित, होरेस मूलत भोग-प्रिय कवि थे। आरम्भिक जीवन के राग और आवेश को आगे चलकर उन्होने अशत शमित भी किया। यदा-कदा एक वीतराग मनस्वी की प्रवृत्ति भी उन्हे छू लेती थी। उनके पास एक कवि की वाणी, एक शिक्षक का नीति-आग्रह, और एक सासारिक व्यक्ति का व्यवहार-ज्ञान था।

होरेस के साहित्यिक व्यक्तित्व का उदय प्रगीतकार और व्यग्य-लेखक के रूप मे हुआ। काव्य को उनकी देन है :

१ सम्बोध-गीत [चार पुस्तके]

२ व्यग्य-निबन्ध [दो पुस्तके]

३ काव्य-पत्र [तीन पुस्तके]

उनकी '**आर्स पोएतिका**' [काव्य-कला] काव्य-पत्र के रूप मे ही लिखित है। वह रोमी काव्य-शास्त्र का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है।

आलोचना की पृष्ठभूमि

यूरोप मे काव्य-शास्त्र-सम्बन्धी सुनिश्चित चिन्तन सर्वप्रथम यूनान के महनीय तत्त्व-चिन्तक और लेखक अरस्तू मे मिलता है। उनका 'काव्य-शास्त्र' सैद्धान्तिक आलोचना की आधार-शिला है। अरस्तू से होरेस तक आते-आते यूनानी सस्कृति के गति-क्रम मे दो शताब्दियाँ समाहित हो जाती हैं। सस्कृति का केन्द्र अथेन्स [यूनान] से रोम पहुँचता है। सर्जनात्मक साहित्य अथवा साहित्य-शास्त्र की दृष्टि से ये दो शताब्दियाँ विशेष समृद्ध नही, जो कुछ महत्त्वपूर्ण कृतित्व इस काल में मिलता है वह अलकार-शास्त्र, वक्तृत्व कला, व्याकरण जैसे रूढ और औपचारिक विषयो में। रोमी कवि होरेस मे आलोचना एक बार फिर काव्य को अपना विवेच्य विषय बनाती है। सम्राट् आगस्तस के सरक्षण मे, तथा मीसिनस, मेस्साला जैसे काव्य-प्रेमियो के प्रोत्साहन के फलस्वरूप कविता की जो प्रतिष्ठा हुई उससे आलोचना के विषय में भी मान-परिवर्तन हुआ। वर्जिल, ओविड, होरेस आदि कवियो ने रोमी काव्य को नया यश, नया गौरव दिया। अत जहाँ एक ओर काव्य के क्षेत्र मे

नवीन उद्बोधन हुआ वहाँ दूसरी ओर काव्य शास्त्र के क्षेत्र मे भी मनन-चिन्तन होने लगा । आलोचना की प्रवृत्ति को उन साहित्यिक गोष्ठियो से भी बल मिला जो काव्य-प्रेमियो के सरक्षण में रोमी कवियो के परस्पर मिलन और काव्य-विवेचन की केन्द्र हो चली थी ।

इस युग मे कवियो और आलोचको के सामने जो प्रश्न थे, उनमे सबसे प्रमुख प्रश्न साहित्यिक आदर्शों का था[1] । रोमी लेखको के सामने तीन आदर्श थे —

१ प्राचीन यूनानी लेखको का आदर्श,

२ अपेक्षाकृत अधुनातन अलेक्जाद्रियन लेखको का आदर्श,

३ पुरानी पीढी के लेटिन कवियो का आदर्श ।

इन तीनो आदर्शों में रोम के तरुण लेखक यूनानी साहित्य से विशेषत प्रभावित थे और उसका अनुकरण ही उन्हे अभीष्ट था । उनके पास राष्ट्रीय चेतना थी, और वे एक ऐसे साहित्य का निर्माण करना चाहते थे जो गौरव में यूनानी साहित्य के समकक्ष हो । इस साहित्य के द्वारा वे रोमी सदेश के अग्रदूत बनना चाहते थे । उनकी धारणा थी कि उनके साहित्य को वह महत्ता तभी मिल सकती है जब वह यूनानी आदर्शों से अनुप्राणित हो उठे । अतः महाकाव्य के लिए उन्होने होमर का अनुकरण किया, त्रासदी के लिए ऐस्ख्युलस और सोफोक्लेस का, गीतिकाव्य के लिए अल्कएउस और सैफो का। इसी प्रकार आलोचना के लिए रोमी समीक्षको के सामने अरस्तू का 'काव्य-शास्त्र' अचूक आदर्श था । होरेस की 'काव्य-कला' पर उसका प्रभाव स्पष्ट और निश्चित है ।

होरेस मे आलोचना-प्रवृत्ति का विकास

रोमी समीक्षको मे होरेस का स्थान अन्यतम है । यद्यपि उनमें आलोचक की वह तीक्ष्ण मेधा नही जो अरस्तू में थी, पर यूरोप के पुनर्जागरण-काल मे उनका नाम अरस्तू के नाम के साथ-साथ सम्मानपूर्वक लिया जाता था। इसका एक कारण शायद उनकी वह क्षमता थी जो काव्य-सूक्तियो मे सागर भर देती थी । वे मूलत कवि थे, किन्तु उनमें वह भावयित्री प्रतिभा

१ देखिए एटकिन्स, लिटरेरी क्रिटिसिज्म इन एन्टिक्विटी, भाग २, पृष्ठ ५०-५३

भी थी जो किसी-न-किसी अश मे सर्जन के मूल में स्थित होता है। वे आरम्भ से ही एक प्रबुद्ध कलाकार थे, जिनमें काव्य की जागरूक चेतना और परख थी। उनके समस्त काव्य मे आलोचक की इस प्रज्ञा को देखा जा सकता है, विशेषत· 'व्यग्य-निबन्धो' मे तथा 'काव्य' मे। 'व्यग्य-निबन्धो' मे वे कुछ सशोधन के साथ ल्युसिलियस की परम्परा को स्वीकार करते हैं। होरेस के अनुसार इस काव्य-विधा का मुख्य उद्देश्य हमारे दोषो का सस्कार करना है, न कि वैयक्तिक कुत्सा और निन्दा का प्रसार।

होरेस के 'काव्य पत्रो' मे 'व्यग्य-निबन्धो' से कही अधिक काव्य-सिद्धान्तो का समीक्षण मिलता है। इस विधा का उनकी दृष्टि मे शैल्पिक महत्व है, उसके माध्यम से वे काव्य के महत्वपूर्ण प्रश्नो पर अपने विचार प्रकट करते हैं। नई पीढी के लेखको का पथ-प्रदर्शन उनका लक्ष्य हे। तत्कालीन कविता की प्रवृत्ति और प्रगति पर यहाँ उनके विचार मिलते हैं। यूनानी उपलब्धियो के अनुकरण पर रोमी साहित्य को समृद्ध बनाने की आवश्यकता पर होरेस ने यहाँ भरपूर बल दिया है।

'काव्य-कला'

'काव्य-पत्रो' में सबसे महत्वपूर्ण कृति 'काव्य-कला' है। यह होरेस का तीसरा और शायद अतिम 'काव्य-पत्र' है। पीसो बन्धुओ को वह सम्बोधित है। इस कृति का रोमन शीर्षक है—'एपिसोला एड पीजोनिज'[१]। विवेच्य विषय के आधार पर क्विनतीलियन ने इसे 'आर्स पोएतिका' (काव्य-कला) का नाम दिया, और इसी नाम से वह साहित्य में प्रसिद्ध है। काव्य के मूलभूत सिद्धान्तो का विवेचन इस कृति में नही मिलता, किन्तु काव्य-शास्त्र-सम्बन्धी व्यावहारिक ज्ञान इसमे कूट-कूट कर भरा हुआ है। रोमी चिन्तन में जीवन के मूल प्रश्नो के प्रति जिज्ञासा का वह भाव न था जो यूनानियो में मिलता है। उनका मानस 'व्यावहारिकता के सूत्रो मे बँधा हुआ था'[२]। व्यावहारिकता की इसी सीमा-परिधि में 'काव्य कला' काव्य-शास्त्र के कतिपय सिद्धान्तो का प्रतिपादन करती है। यहाँ होरेस कवि के कर्म-लक्ष्य की अतरग पैरवी करते हैं। उनके विपक्षी गूढ ज्ञानी, दार्शनिक, राजनीतिज्ञ नही, किन्तु

---

१ Epistola ad Pisones (जिसका अंग्रेजी रूपान्तर हुआ Epistle to the Pisos)

२ देखिए "पाश्चात्य काव्य-शास्त्र की परम्परा" पृष्ठ ३

उनके समानधर्मा 'कवि' हैं जिनमें काव्य की प्रेरणा की अपेक्षा लेखन का दभ है, तथा उसी जाति के शौकीन, मनचले, 'अढाई अक्षरी' विद्वान हैं। होरेस की विशिष्टता मार्मिक विश्लेषण अथवा क्रमबद्ध चिन्तन मे नही, किन्तु काव्य शास्त्र के पूर्व-निर्धारित सिद्धान्तो की स्वीकृति पर स्पष्ट, सुष्ठु सूक्तियो का निर्माण करने मे है।

'काव्य-कला' का रचना-काल

'काव्य-कला' का रचना-काल विवादास्पद है। इस सम्बन्ध मे दो धारणाएँ है —

१. २३ ई० पू०—१७ ई० पू० [प्रगीत-काल]
२ १० ई० पू०— ८ ई० पू० [अन्तिम-काल]

इन दोनो मतो के पक्ष-विपक्ष में आलोचको के बीच काफी विवाद रहा है, किन्तु एक बात पर दोनो मतो मे ऐक्य है। 'काव्य कला' की रचना की प्रथम सीमा वे २३ ई० पू० से पूर्व नही मानते, कारण काव्य के इस रूप को होरेस ने इसी समय स्वीकार किया था। निश्चित रचना-तिथि के सम्बन्ध मे फिर भी गहरा विचार-वैषम्य है। जो लोग २३-१७ ई० पू० की पूर्व-सीमा को स्वीकार करते हैं उनका तर्क है कि यह पुस्तक वर्जिल की मृत्यु [१९ ई० पू०] के पहले लिखी गई होगी। उस समय तक वर्जिल के महाकाव्य 'इनीड' का प्रकाशन भी नही हुआ था, अन्यथा क्या कारण हो सकता है कि 'काव्य-कला' मे, जो काव्य-शास्त्र का ग्रन्थ है, वर्जिल का प्रासगिक रूप मे ही उल्लेख हो, और महाकाव्य का पूर्ण विवेचन न हो? इस तर्क में कुछ सगति अवश्य है, पर समकालीन कवियो पर विचार प्रकट करना होरेस को शायद अभीष्ट नही था। फिर 'काव्य-कला' का आदर्श अरस्तू का 'काव्य-शास्त्र' है जिसमें नाटक का विवेचन ही प्रमुख रूप में मिलता है।

विद्वानो का दूसरा वर्ग कृति का रचना-काल १०-८ ई० पू० मानता है। जिन युवको को यह काव्य-पत्र सम्बोधित है उनके पिता ल्युसिअस कैलपर्नियस पीसो राज्य के एक उच्च पदाधिकारी थे। वे स्वय एक कवि थे, और फिर कवियो के सरक्षक भी। उनके पिता (युवक पीसो-युग्म के पितामह) स्वय काव्य के अनुरागी थे, और अपने समय के तत्त्व-चिन्तको के साथ उनकी मित्रता थी। फिलोदेमस के साथ उनका घनिष्ठ परिचय था और इस भोगवादी चारवाक का प्रभाव किसी-

न-किसी अश मे होरेस और उनके काव्य पर देखा जा सकता है। फिलोदेमस का भाषण सुनने के लिए वर्जिल, होरेस आदि कवियो का जमघट हो जाता था। ल्युसिअस पीसो के पुत्रो में कविता की लौ स्वाभाविक थी, पर उनमें अभी न तो अभिव्यक्ति का सौष्ठव ही था और न विचारो की प्रौढता ही— वे अब इस योग्य हो चुके थे कि एक मान्य कवि का आदेश ग्रहण कर सकें।

यह भी सम्भव है कि 'काव्य-कला' की रचना का आरम्भ कवि ने २३ ई० पू० के आसपास ही कर दिया हो। किसी-न-किसी रूप मे पुस्तक का लेखन चलता रहा हो, उसमे सशोधन होते रहे हो, फिर वर्षों तक पुस्तक अप्रकाशित पडी रही हो। विवेच्य विषय मे जो गुम्फन है वह काल-विस्तार मे किए गए सशोधनो और अनेकानेक विषयो को सक्षेप मे समेटने के प्रयास का निर्देशक है।

'काव्य-कला' का स्वरूप और विषय-प्रतिपादन

'काव्य-कला' का साहित्यिक रूप काव्य-पत्र है। पत्र-रूप मे लिखित होने के कारण उसमे विषय को सहज ही कह देने की रुचि परिलक्षित होती है। किन्तु उमके विषय मे तारतम्य और एकसूत्रता का अभाव है। सेंट्सबरी ने इस कृति को स्फुट विचारो का सकलन माना है।[1] होरेस ने अपने विषय का आरम्भ तो सुन्दर ढग से किया है, किन्तु उसे अन्त तक वे सघटित नही रख सके हैं। उसके रूप-विन्यास मे उस चित्र का सादृश्य है जिसके ऊर्ध्व भाग मे नारी की कमनीयता है और अधोभाग मे मत्स्य की विकृति। काव्य मे जिस सतुलन और औचित्य की यह कृति प्रतिष्ठा करना चाहती है, उन्ही गुणो का इसके विषय सघटन मे अभाव है। स्केलिजर ने इसे 'कला-विहीन कला' के नाम से अभिहित किया है और कॉलरिज ने इसे 'अव्यवस्थित स्फुट विचार-पत्र' माना है। 'काव्य कला' के विषय की असम्बद्धता और उसके विचार-प्रतिपादन में सयोजन का अभाव इस कृति की बहुत बडी त्रुटि है, किन्तु आधुनिक शोध-कार्य ने उसकी विशृ खलता मे भी एक शृ खला देखने की कोशिश की है। इस शोध-कार्य ने 'काव्य-कला' के स्वरूप को उन यूनानी आलोचना कृतियो पर आधारित माना है जो होरेस के युग मे काव्य-शास्त्र के मान्य ग्रन्थ थे। इन ग्रन्थो मे विषय का विवेचन तीन खण्डो में विभक्त होता था —

---

१ ए हिस्ट्री आव क्रिटिसिज्म एन्ड लिटरेरी टेस्ट इन यूरोप, भाग १।

१ पोएसिस [काव्य का आधेय]

२ पोएमा [काव्य के रूप]

३ पोएता [कवि का धर्म]

सामान्य रूप मे होरेस इसी परम्परा के अनुगामी थे, पर विशेष रूप में वे इस परम्परा के एक प्रतिष्ठित लेखक निओतॉलेमस[1] का अनुकरण कर रहे थे। निओतॉलेमस की 'काव्य-कला' आज उपलब्ध नही है, किन्तु विद्वानो का मत है कि इस पुस्तक का होरेस पर गहरा प्रभाव था। होरेस ने अपनी पुस्तक मे आचार्य निओतॉलेमस की मान्यताओ को तो स्वीकार किया ही है, विषय के प्रतिपादन में भी वे उनका अनुकरण कर रहे थे। अत होरेस के विषय-प्रतिपादन की रूपरेखा स्पष्ट है और उसकी स्फुटता को निम्न रूप मे एकसूत्र किया जा सकता है —

प्रथम खण्ड [काव्य का आधेय]

औचित्य-सिद्धान्त का महत्व
काव्य-वस्तु के चयन मे सरलता एव एकसूत्रता

द्वितीय खण्ड [काव्य के रूप]

(१) शिल्प एव शैली—शब्दो का चयन, योजना, प्रयोग, छदो के प्रयोग

(२) नाटक

कथा-वस्तु का काव्योचित प्रयोग त्रासदी एव कामदी के विषयो के प्रयोग में औचित्य
शब्द एव भाव-मुद्रा पात्रानुकूलता
कथा-वस्तु का चयन और निर्वाह
चरित्र-चित्रण मे औचित्य
दृश्य और अभिनेयता
नाटक-सम्बन्धी अन्य अभिमत (नाटक की विस्तार-सीमा, यान्त्रिक अवतारणा, वृ दगान, दर्शकगण) 'सेट्र' नाटक (एक गम्भीर नाटक जिसमे निम्न हास्य का पुट भी हो) 'आयबिक' (लघु गुरु-

---

१ देखिए एटकिन्स, पृ०
सैंट्सबरी [होरेस-सम्बन्धी समीक्षण]
विमसाट व क्लीन्थब्रुक्स, लिट्रेरी क्रिटिसिज्म, १६५०

द्विमात्रिक) छंद——स्वर और लय, यूनानी व रोमी नाटकोंके विकास पर विहगम दृष्टि ।

(३) कविता

काव्य-रचना मे असावधानी

प्रतिभा और काव्य सृजन

काव्य और निर्भ्रान्ति विवेक, अर्थ-लिप्सा का दुष्प्रभाव

काव्य के प्रयोजन नैतिक शिक्षा और आनन्द

सत्काव्य और असत्काव्य

काव्य के हेतु : प्रतिभा और कला

एक विक्षिप्त कवि का व्यग्य-चित्र

इस दृष्टि से अध्ययन करने पर 'काव्य-कला' के विविध विचारो मे एक शृंखला अवश्य आ जाती है, पर फिर भी उसमे आन्तरिक एकता का अभाव है। काव्य-शास्त्र के ग्रन्थ मे जब तक विचारो की सगति और आन्तरिक अन्विति नही होती, उसमे प्रभावोत्पादन की क्षमता नही आती। पत्र के रूप मे 'काव्य-कला' की रचना होने के कारण कुछ दूर तक उसकी सीमाएँ अवश्य बँध जाती हैं, किन्तु उन्ही सीमाओ के कारण उसकी शैली मे एक सहज निकटता भी है। सैद्धातिक विवेचन की क्लिष्टता से बच कर लेखक सहज ही अपनी बात कह देता है।

'काव्य कला' का आधारभूत सिद्धान्त

होरेस की आलोचना के मूल में साहित्यिक रूपो पर विशेष आग्रह है। वे काव्य के प्रत्येक रूप, वर्ग, जाति-प्रजाति का गुणात्मक मूल्य स्वीकार करते हैं। विधाओ का सम्मिश्रण उनकी दृष्टि से उच्छृङ्खलता है। काव्य के रूप-भेदो पर यह आग्रह साहित्य के औचित्य-सिद्धान्त से सम्बद्ध है। यूनानी व इतालवी दोनो काव्यो मे औचित्य का महत्त्व सर्वमान्य है। प्लेटो और अरस्तू की रूप और विचार-सम्बन्धी दार्शनिक उपलब्धियाँ इन काव्यगत सिद्धान्तो की आधार-शिला हैं। स्वय अरस्तू मे काव्य के विभिन्न रूप-भेदो—महाकाव्य, त्रासदी, कामदी—के प्रति आग्रह मिलता है। गद्य और पद्य की विभिन्न शैलियो का भी उनमे विश्लेषण है। होरेस मे इस वर्गीकरण की पूर्ण स्वीकृति है।

'काव्य-कला' का आरम्भ ही एक ऐसे दृष्टात से होता है जिसमे साहित्यिक रूपो के मिश्रण का उपहास किया गया है :

> "कल्पना करो कि कोई चित्रकार घोडे की ग्रीवा पर मानव-शिर का प्रत्यकन करने का प्रयत्न करे और फिर भाँति-भाँति के पशुओ के अवयवो (का सयोग करके उन) पर रग-बिरगे पख चित्रित कर दे जिसके फलस्वरूप अथ तो ऊपर सुन्दर नारी-रूप के विधान से हो परन्तु इति अधोभाग मे कुरूप मत्स्य की आकृति पर आकर हो जाये और तुम्हे एकान्त मे यह चित्र देखने का अवसर मिले तो बताओ मित्रो ! क्या तुम अपनी हँसी का सवरण कर सकोगे ।"[१]

इस निषेधात्मक दृष्टात का साकेतिक अर्थ यह है कि साहित्य के प्रत्येक रूप-प्रकार की अपनी स्वतत्र इकाई है, और उसकी सार्थकता इसी मे है कि उसके स्वरूप की रक्षा हो। इस स्वरूप-रक्षा से न तो विषय मे अन्तर्विरोध खडे होते हैं और न काव्य की कलात्मक सवेदना नष्ट होती है। जो अद्भुत सृष्टि के आकर्षण मे विषय को अनेकविधता प्रदान करना चाहता है वह मानो 'जलपरी को वन मे तथा वन्यवराह को जल-तरगो पर चित्रित करता' है।[२]

होरेस ने जिस स्वरूप-औचित्य की प्रतिष्ठा की है, वह काव्य के प्रत्येक अग-उपाग से सम्बद्ध है। विषय-वस्तु, छद-विधान, शैली, चरित्र-चित्रण, अभिनेयता—सब उसके सीमा-विस्तार के अन्तर्गत आ जाते हैं। प्रश्न है कि होरेस का औचित्य-सिद्धान्त वस्तु की प्रकृति से सम्बद्ध है, अथवा वह परम्परा का प्रतिफलन मात्र है ? क्या परम्पराएँ मूलत वस्तु की प्रकृति से सम्बद्ध नही ? होरेस मे इन मूल प्रश्नो पर चिन्तन नही मिलता, न उनके प्रति उनमे जिज्ञासा-भाव ही है। उनकी आलोचना वस्तुत प्रकृति और परम्परा के समन्वित अनुकरण की साधना है।

यह कहा जाता है कि होरेस के औचित्य-सिद्धान्त का निर्देशन समाज के अभिजात वर्ग से होता है, वह प्रकृति से प्रेरणा नही ग्रहण करता। उनका ध्यान सदैव अपने दर्शक और श्रोता [अथवा पाठक] पर केन्द्रित है —

---

१ 'काव्य-कला' [गद्य] पृष्ठ १   २ 'काव्य-कला' [गद्य]-पृष्ठ २

"   सम्पूर्ण रोमवासी—उच्च वर्ग के हो या निम्न वर्ग के—उस पर जी खोल कर हँसेगे"।[1] •••

"अब सुनो कि मैं और सम्पूर्ण श्रोता-जगत् क्या प्रत्याशा करते हैं।[2]"

किन्तु यह आलोचना होरेस के प्रति न्याय नही करती। इन आदेशो में उनका ध्यान यथार्थत नाटक की सफलता व असफलता पर केन्द्रित है। 'काव्य-कला' मे कई स्थलो पर वे भावक की निर्भ्रान्त विवेक-दृष्टि को ही औचित्य का आधार मानते हैं। युवक कवियो को उनकी यही शिक्षा है 'इन कविताओ की स्वीकृति पहले प्रौढ आलोचक से पाओ।' यह आदेश सामाजिक जन-रुचियो से प्रेरणा नही ग्रहण करता।

यह स्वीकार करने पर भी होरेस का औचित्य-सिद्धान्त बहिरग आलोचना का ही अग है, वह काव्य का मौलिक तत्त्व नही। भारतीय काव्य-शास्त्र में मूलत उसे साहित्य का अन्तरग गुण माना गया है—'औचित्य रससिद्धस्य जीवितम्' [क्षेमेन्द्र]। इस अन्तर का मूल कारण भारतीय और पाश्चात्य साहित्यो का तात्त्विक अन्तर है। फिर होरेस की दृष्टि तो अत्यन्त वस्तुपरक थी, और रीति-परम्पराओ के अनुकरण को ही उसने काव्य की सिद्धि मान लिया था।

होरेस का काव्य-चिन्तन

होरेस के काव्य-चिन्तन मे मौलिक उद्भावनाओ की अपेक्षा यूनानी आदर्शों के अनुकरण की विशेष प्रवृत्ति है। उनके काव्यालोचन को दो भागो में रखा जा सकता है —

१ काव्य-सम्बन्धी विचार

२ नाटक-सम्बन्धी विचार

काव्य का स्वरूप क्या है, उसकी प्रकृति क्या है, इन प्रश्नो पर होरेस के विचार अरस्तू की स्थापनाओ पर आधृत हैं। अरस्तू ने काव्य को जीवन की अनुकृति माना है, किन्तु उनके अनुकृति-सिद्धान्त में रचनात्मक प्रक्रिया का

---

१ 'काव्य-कला' [गद्य] पृष्ठ ६   २ 'काव्य-कला' [गद्य] पृष्ठ ९

भी अन्तर्भाव हो जाता है। होरेस ने प्रकटन काव्य की प्रकृति का विवेचन नही किया है, पर जहाँ वे कविता की तुलना एक अनुकृतिमूलक कला (चित्र-कला) के साथ करते हैं वहाँ परोक्ष रूप में वे काव्य के अनुकृति-सिद्धान्त को स्वीकार कर लेते हैं। नाटक को तो वे निश्चय ही जीवन का अनुकरण मानते हैं—"कुशल अनुकर्त्ता से मेरा अनुरोध है कि वह सच्चे प्रतिमानो के लिए जीवन और नीति का अध्ययन करे और वही से जीवन की सहज भाषा ग्रहण करे।"[1]

काव्य की क्रियात्मक प्रवृत्ति पर होरेस ने अधिक बल नही दिया है, पर उस सिद्धान्त से वे अपरिचित नही। रचनात्मकता के लिए उनका शब्द है 'आविष्कार' अर्थात् उद्भावना। इसके अन्तस् मे स्थित है 'प्रतिभा'[2]।

भारतीय वाङ्मय मे प्रतिभा प्रज्ञा का वह प्रकार है जो नवीनता का उन्मेष करती है, जो अपूर्व वस्तु-रूपो के निर्माण मे सक्षम है।[3] उसमे पूर्व-जन्म का सस्कार भी अन्तर्भूत हो जाता है। पश्चिम में पूर्व-सस्कार के लिए तो स्वीकृति नही है, पर वश-प्रभाव, पितर प्रभाव आदि को स्वीकार किया गया है। इस बात पर दोनो सहमत है कि प्रतिभा एक असाधारण कोटि की मेधा है। वह मानस की एक असामान्य सहज शक्ति है। उसकी विलक्षणता कभी-कभी व्यक्ति-वैचित्र्य से प्रकट होती है, किन्तु व्यक्ति-वैचित्र्य के अतिरजित रूपो को सदैव प्रतिभा का प्रकाशन नही मानना चाहिए। वह तो एक प्रकार का विक्षेप है और होरेस ने उसकी भर्त्सना ही की है। वे उन कवियो पर व्यग करते हैं जो लबे लबे नाखूनो, अस्त-व्यस्त दाढी, नहाने-धोने के प्रति उदासीनता, एकात-प्रियता आदि को प्रतिभा का लक्षण मानते हैं।[4]

प्रतिभा काव्य का महत्वपूर्ण हेतु है। अरस्तू ने उसके मूल्य को स्वीकार किया है। वे काव्य के दो हेतु मानते हैं—अन्तर्दृष्टि (अर्थात् प्रतिभा) और शास्त्र ज्ञान (अर्थात् निपुणता)।[5] प्रतिभा और निपुणता के सापेक्षिक महत्व

---

१. 'काव्य कला' (गद्य) पृष्ठ १६

२ 'प्रज्ञा नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभामता' (भट्टतौत)

३. 'प्रतिभा अपूर्ववस्तुनिर्माणक्षमा प्रज्ञा' (अभिनवगुप्त)

४ 'काव्य-कला' पृष्ठ १५   ५ 'काव्य-शास्त्र' पृ०—१७।

पर वहाँ काफी विवाद रहा है ।[1] निम्रोतॉलेमस में दोनो हेतुग्रो का समीकरण मिलता है । होरेस में भी समीकरण की यही प्रवृत्ति परिलक्षित होती है .—

> "अच्छी कविता की उद्भावना प्रतिभा [प्रकृति] से होती है या कला से—यह विवादास्पद बात है । जहाँ तक मेरा अपना विचार है मै तो बिना प्रतिभा के अध्ययन का और बिना अभ्यास के प्रतिभा का कोई उपयोग नही समझता । अत यह सत्य है कि उन्हे एक दूसरे का सहयोग अपेक्षित होता है और वे पारस्परिक हित के लिए एक दूसरे की सहायता करते हैं ।"[2]

काव्य के हेतुग्रो पर विचार करने के साथ-साथ होरेस काव्य के प्रयोजनो पर भी प्रकाश डालते हैं। पश्चिम में काव्य के वस्तु और रूप का जो विभेद मिलता है, वह काव्य के प्रयोजन को भी निर्दिष्ट करता है । 'वस्तु' पर आग्रह काव्य के नैतिक उद्देश्य की, तथा 'रूप' पर आग्रह आनन्दवाद की स्थापना करता है । 'स्टोइक' दार्शनिको ने काव्य का प्रयोजन नीति-शिक्षा माना, हेराक्लिग्रोदोरस और एरातोस्थेनेस जैसे आचार्यो ने पद-लालित्य की रमणीयता के द्वारा आनन्द को महत्त्व दिया । निम्रोतॉलेमस ने नीति-शिक्षा और आनन्द के समन्वय में काव्य का प्रयोजन देखा । होरेस मे भी यही समन्वय-भावना मिलती है —

---

१ भारतीय काव्य-शास्त्र भी इस विवाद से अछूता नही है । वामन ने काव्य के तीन—लोक, विद्या, प्रकीर्ण—स्वतत्र हेतु माने है । दडी मे काव्य के हेतुग्रो का समीकरण है—

> नैसर्गिकी च प्रतिभा, श्रुतञ्च बहु निर्मलम्
> अमन्दश्चाभियोगश्च, कारण काव्य-सम्पद ।

दडी के नैसर्गिक प्रतिभा, निर्भ्रान्त लोक-शास्त्र-ज्ञान, एव अमन्द अभियोग को मम्मट ने क्रमश शक्ति, निपुणता और अभ्यास के नाम से अभिहित किया है । वस्तुत काव्य के ये हेतु एक दूसरे का बहिष्कार नही करते वरन् वे परस्पर पूरक है । प्रतिभा जहाँ काव्य का आन्तरिक गुण है, वहाँ निपुणता उसका बाह्य तत्व ।

२. 'काव्य कला' पृष्ठ २१

"कवि का उद्देश्य या तो उपयोगिता होता है या आह्लाद या फिर वह उपयोगी और आह्लाददायी का एक ही मे समन्वय कर देता है। ' जो कवि उपयोगी और मधुर का सश्लेषण करता है वही सफल होता है क्योकि वह अपने पाठक को आह्लादित भी करता है और शिक्षित भी।"[१]

समस्त उत्कृष्ट साहित्य का रहस्य है सजग विवेक शक्ति।[२] उसमे उपादेयता की स्थूलता और आनन्दवाद की वायवीयता का परिहार हो जाता है। जो काव्य को अर्थलिप्सा का साधन मानते हैं, उनसे श्रेष्ठ काव्य की आशा नही की जा सकती[३]। काव्य का लक्ष्य तो राष्ट्र की सस्कृति को अक्षुण्ण रखना है। ओरफेउस एव अम्फिग्रोन का सस्कृति के विधान मे यही अमर योग है। कविता समाज को बर्बरता से मुक्त करती है, वह सभ्य समाज की नीव रखती है, नियमो की स्थापना करती है, वीर हृदय में शौर्य का सचार करती है, श्रम को आह्लाद का वरदान देती है[४]। काव्य के इस 'शिवेतरसतए' उद्देश्य का अपना मूल्य है, पर उसके आनन्द-पक्ष का महत्त्व कम नही। काव्य में केवल सौन्दर्य ही नही, किन्तु उसमे रसोत्पादन की क्षमता भी होनी चाहिए, उसमे मन रमना चाहिए। काव्य मे रूपाभिव्यक्ति का सौन्दर्य ही सब कुछ नही, उसमे हृदय की वृत्तियो को स्पर्श करने की शक्ति होनी चाहिए[५]।

होरेस ने प्रासगिक रूप मे काव्य-शैली का भी विवेचन किया है। उनके अनुसार काव्य-शैली के तीन प्रमुख गुण है —

१. उपयुक्त शब्द-चयन
२ सशक्त अभिव्यक्ति
३ स्पष्टता

शब्द-चयन में कवि को औचित्य से काम लेना चाहिये। उसे कृत्रिम एव आडम्बरपूर्ण शब्दो का परिष्कार करना चाहिए, रुक्ष एव कठोर शब्दो को मसृण रूप देना चाहिए, ओज एव शक्ति से हीन शब्दो का परित्याग, तथा नित्य-प्रति के सरल शब्दो का प्रयोग करना चाहिए। परिचित शब्दो को काव्योपयोगी बनाना कवि का धर्म है। आवश्यकता पडने पर वह नए शब्दो का निर्माण भी कर सकता है। प्रचलन ही शब्दो को स्थिर, निर्धारित

१,२,३,४,५ 'काव्य-कला' पृष्ठ सख्या (क्रमश.) १७, १६, १७, २०, ६

करता है। काल-क्रम मे अनेक जीर्ण-शीर्ण शब्द विलुप्त तथा अनेक नवीन शब्द आविर्भूत हो जाते हैं[1]।

अभिव्यक्ति को प्राणवान बनाने के लिए शब्दो की योजना पर ध्यान देना आवश्यक है। कुशल शब्द-योजना से नित्य-प्रति के साधारण शब्दो मे भी आकषरण आ जाता है[2]। प्राजल अभिव्यक्ति का रहस्य शब्दो का सफल बध और नियोजन है। स्पष्टता शैली का मूल गुण है। अभिव्यक्ति मे प्रसादत्व के साथ ऊर्जा और ओज भी आवश्यकतानुसार होने चाहिए।

होरेस ने काव्य के रूपो के सम्बन्ध में जो स्थापना की है वही छदो के सम्बन्ध मे भी है। प्रत्येक छद का वे एक विशिष्ट विषय मानते हैं, और एक छद को दूसरे छद के विषय का माध्यम नही बनाना चाहते। छद और उसका विषय अविच्छिन्न भाव से सम्बद्ध हैं। षट्पदी महाकाव्य के विषय के लिए उपयुक्त है, करुण-गीत दुखपूर्ण विषय के लिए, लघु-गुरु-द्विमात्रिक छद (आएम्बिक) व्यग्य-लेखो व कामदी एव त्रासदी के लिए, सम्बोध-गीत विजय-स्तवन के लिए, प्रगीत प्रेम के उच्छ्वास व्यक्त करने के लिए[2]। होरेस का यह 'वृत्तौचित्य' कुछ अश तक मान्य हो सकता है, किन्तु व्यवहार की दृष्टि से वह रूढ नही माना जा सकता। वृत्तो का औचित्य निर्धारित करते समय वे परम्परा का पालन ही कर रहे थे, यो उनके अपने काव्य में ही उसका निर्वाह नही हुआ है। वृत्तो मे नवीन उद्भावनाएँ हो सकती हैं। उनके कई सम्बोध-गीत विषय की दृढ मर्यादा से मुक्त हैं। साराश यह कि जहाँ होरेस आचार्यत्व से हट कर कवि की सवेदना मे आस्था रखते हैं उनके काव्य-प्रयोग मे त्रुटि नही आती।

होरेस का नाटय-चिन्तन

होरेस का नाटय-चिन्तन अरस्तू के 'काव्य-शास्त्र' पर आश्रित है। उसमे परम्परागत सिद्धान्तो के अनुकरण और औचित्य के सरक्षरण पर बल दिया गया है। नाटक की कथा-वस्तु के सम्बन्ध मे होरेस की धारणा है कि लेखक को यथासाध्य परम्परागत कथाओ का प्रयोग करना चाहिए। लेखक नवीन कथानक की कल्पना कर सकता है, पर उस कल्पना मे सगति और उसके प्रयोग में व्यवस्था होनी चाहिए। यह कार्य सरल नही। परिचित कथानक के प्रयोग मे भी मौलिकता हो सकती है, बशर्ते कि लेखक शब्द-प्रति-

---

१, २, 'काव्य-कला', पृष्ठ सख्या क्रमश. ४, ३

शब्द अनुकरण से ऊपर उठ कर कुशल सविधान प्रस्तुत करे। कथानक का जो अश उसके स्पर्श से दीप्त न हो, उसे वह छोड दे, तथ्य और अतथ्य का कल्पनात्मक समन्वय करे, उसके विषय के आदि, मध्य और अन्त मे अन्विति हो[1]।

परम्परागत कथानक का निर्वाह तभी सम्भव है जबकि नाटचकार उस कथानक से सम्बद्ध चरित्रो की स्वरूप-रक्षा कर सके। अखिल्लेस मे शौर्य आवेश और पराक्रम हो, मेदेआ हठी और दुर्दमनीय नारी हो, ईनो के नेत्र भीगे हो। यदि कथानक मे नवीन उद्भावना हो तो पात्र की कल्पना में भी तदनुकूल सगति हो[2]। होरेस की यह धारणा हमारे साहित्य के 'प्रकृत्यौचित्य'-सिद्धान्त से मेल खाती है। चरित्र की प्रकृति के अनुरूप उसका चित्रण आवश्यक है।

चरित्र-चित्रण मे इस बात का भी ध्यान रहे कि पात्र की क्रियाएँ रुचियाँ, विशिष्टताएँ उसकी अवस्था के अनुकूल हो। बालक अपने समवयस्को के साथ खेलता है, वह क्षण में रुष्ट, क्षण मे तुष्ट होता है। युवक मे ऊर्जा और आवेश होते हैं, वह द्रव्य के प्रति लापरवाह, बुराइयो के प्रति नमनीय होता है, उसकी राग-रुचियो मे शीघ्र परिवर्तन होते रहते हैं। यौवन पार होने पर मनुष्य के हृदय में धन-धान्य-प्रभुत्व की आकाक्षा प्रबल होती है। वृद्धावस्था में वह कष्टो से घिर जाता है, उसकी कृपणता उमे अपनी उपलब्धियो का आनन्द नही भोगने देती, उसके काम-काज मे आशका, अनुत्साह दीख पडते हैं। वह स्वय अनिश्चित, अस्थिर, हतप्रभ होता है। दीर्घ जीवन की लालसा से वह अधीर, अपने बचपन के राग गाने मे तत्पर और नई पीढी की आलोचना में प्रवण होता है[3]।

होरेस ने अभिनय के औच्चित्य पर भी बल दिया है। अभिनय में ऐसी शक्ति होनी चाहिए कि वह दर्शक को आदि से अन्त तक अपनी ओर आकर्षित रखे। यदि दर्शक के मुख को हास्य से दीप्त करना है तो पात्र का मुख भी हास्य-स्मित होना चाहिए। यदि दर्शक के हृदय को दु ख-विह्वल करना है, तो अभिनेता का मुख भी सजल-कातर होना चाहिए। यदि अभिनय पात्र की प्रकृति के अनुरूप नही है, तो दर्शक या तो ऊँघने लगेगे या खिल्ली

---

१ देखिए 'काव्य-कला' पृष्ठ ८ २ 'काव्य-कला' पृष्ठ ७

३ देखिए 'काव्य-कला' पृष्ठ ९

उडाने। 'अभिनयौचित्य' मे इस बात पर ध्यान रहे कि "शोकार्त्त व्यक्ति के मुख से दु खपूर्ण शब्द शोभा देते हैं और क्रुद्ध व्यक्ति के मुख से रोषपूर्ण शब्द। प्रफुल्लमन व्यक्ति से मुख से परिहासपूर्ण शब्द अच्छे लगते हैं और परुष शब्द गम्भीर मुख के उपयुक्त होते है"।[1]

'घटनौचित्य' पर होरेस ने जो विचार प्रकट किए हैं वे विशेष महत्वपूर्ण हैं। सुनने की अपेक्षा जो हम अपनी आँखो से देखते हैं उसका प्रभाव अधिक गहरा होता है। घटनाएँ नेत्रो के सामने अधिक जीवन्त रूप मे प्रस्तुत होती हैं। इसी कारण नाटक की प्रभाव क्षमता अप्रतिम है। किन्तु ऐसी भी घटनाएँ हैं जिनका रगमच पर अभिनय न तो श्लाघ्य ही है और न वाछनीय ही। उनके अभिनय से दर्शक के हृदय मे जुगुप्सा अथवा अविश्वास का भाव जगता है। ऐसी घटनाएँ रगमच पर वर्जित है, उदाहरण के लिए दर्शको के सम्मुख मेदेआ का अपनी सन्तान की हत्या करना, पापी अत्रेउस का नर-मास पकाना, प्रोकने का पक्षी अथवा कादमस का सर्प बन जाना। 'घटनौचित्य' की दृष्टि से इनका अभिनय वर्जनीय है[2]।

'काव्य-कला' मे यत्र-तत्र नाटच-शैली पर भी होरेस के विचार मिलते हैं। नाटक का सीमा-विस्तार न तो पाँच अको से कम हो, और न पाँच अको से अधिक। कामदी और त्रासदी के विषयो का परस्पर मिश्रण अवाछनीय है। कामदी के विषय की अभिव्यक्ति त्रासदी-छन्दो मे नही हो सकती और न त्रासदी का ही विषय नित्य-प्रति की बोली मे प्रस्फुटित हो सकता है। प्रत्येक की अपनी-अपनी शैली है, और उसका निर्वाह तदनुरूप होना चाहिए। हाँ, ऐसे अवसर आ सकते हैं जब कामदी का स्वर उदात्त हो सकता है और त्रासदी के नायक गद्य की भाषा मे अपना दु ख व्यक्त कर सकते हैं। प्रथम के लिए क्रुद्ध ख्रेमेस का उदाहरण दिया जा सकता है जिसके प्रलाप में स्वर का आरोह है, और दूसरे के लिए तेलेफुस और पेलेउस के दृष्टात सामने हैं जो लोकभाषा का प्रयोग करते है[3]। प्रसगत. होरेस ने 'यान्त्रिक अवतारणा' (Deus Ex machina) के प्रयोगो को भी कम ही स्वीकृति दी है, और वृन्दगान के सम्बन्ध मे उनका मत है कि उससे कथानक को गति मिलनी चाहिए तथा उससे लोक-मगल की साधना होनी चाहिए।[4]

---

१ देखिए 'काव्य-कला' पृष्ठ ६

२, ३, ४. देखिए 'काव्य-कला' पृष्ठ-सख्या क्रमशः १०, ५, ११

सार एवं समीक्षा

ऐतिहासिक दृष्टि से 'काव्य कला' का पाश्चात्य काव्य शास्त्र में महत्वपूर्ण स्थान है, किन्तु सैद्धान्तिक दृष्टि से वह काव्य-शास्त्र को कोई विशेष मूल्यवान् योग नही देती। सेट्सबरी ने इसे 'साधारण मेधा' (के व्यक्ति) की कृति माना है। काव्य के मूलभूत सिद्धान्तो का अन्तरग चिन्तन होरेस मे नही मिलता, उनका सारा कर्तृत्व नियम-परम्पराओ से परिवेष्टित है। काव्य की आत्मा का उद्घाटन करने की अपेक्षा वे उसके बाह्य रूप-भेदो और अग-विन्यास के निरूपण मे ही व्यस्त हो गए। न उन्होने ऐतिहासिक अथवा तुलनात्मक समीक्षा पर ही गभीर ध्यान दिया अन्यथा वे इस स्थिति मे थे कि यूनानी व रोमी साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन पर काव्य के सिद्धान्तो को एक ठोस आधार दे सकें, न उन्होने अपने युग के मान्य कवियो—ल्युसिलियस, वैरियस, पोलियो, वर्जिल आदि—का सम्यक् विवेचन ही किया। उनका अनुकरण-सिद्धान्त भी मूलत अरस्तू के सिद्धान्त से दूर हट जाता है। वह जीवन के चिन्तन सत्यो का अनुकरण न कर, केवल रीति-परम्परा के अनुकरण मे सीमित हो जाता है, अर्थात् जहाँ यूनानियो की गति सीधे जीवन मे थी, वहाँ होरेस यूनानी आदर्शो के अनुकरण को ही कवि-कर्म की इति-श्री मान बैठे। यूनानियो के अनुकरण का भी वास्तविक अर्थ होना चाहिए था यूनानियो की ही तरह जीवन-ऋत तक पहुँचने की प्रवृत्ति, और यही प्रवृत्ति होरेस में परिलक्षित नही होती। काव्य के इतिहास की यह एक विचित्र कथा है कि परवर्त्ती आचार्यो ने भी होरेस का ही 'अनुकरण' किया। इटली के वीडा, फ्रास के बुअलो और इगलैड के पोप पर होरेस का प्रभाव अमिट है।

होरेस में मर्मस्पर्शिनी प्रज्ञा का अभाव है, किन्तु उनकी व्यावहारिक दृष्टि तेज है। उन्हे रोमी काव्य की सीमाओ का ज्ञान है और उसके उत्कर्ष की उनमे अदम्य आकाक्षा है। रोम के जातीय जीवन के सन्देश को ज्वलत करने की उनमे आग्रह-भावना है, अत अपने देश के काव्य का उचित दिशा-निर्देशन उनका लक्ष्य है। काव्य के विशद विश्लेषण-विवेचन पर आधृत अनुगम-पद्धति उनकी 'काव्य कला' की शैला नही, कारण वहाँ व्यवस्थित विचार-विवेचन अपेक्षित नही, स्फुट रूप में समीक्षण ही वाछनीय है।

'काव्य कला' ने कविता को एक नवीन गरिमा दी। काव्य के मल हेतुओ एव प्रयोजनो की प्रतिष्ठा की, सत् काव्य के मूल्य का उद्घाटन किये,

नाटकीय तत्त्वो का औचित्य-सरक्षण किया। काव्य की अचूक परम्पराओ का प्रतिपादन किया। इन सबका अपना मूल्य है, पर उन सबसे गुजरती हुई एक कवि की अनुभूति जिस कलात्मक सवेदन को व्यक्त करती है, उसका रूढि-सिद्धान्तो के बीच, अन्यतम महत्व है। वह अभिव्यजना को सौष्ठव देती है और आलोचक की मान्यताओ को पाठक के प्रति सवेद्य बनाती है।

गद्यानुवाद

[श्री महेन्द्र चतुर्वेदी]

काव्य-कला

[गद्य]

कल्पना करो कि कोई चित्रकार घोडे की ग्रीवा पर मानव-शिर का प्रत्यकन करने का प्रयत्न करे और फिर भाँति-भाँति के पशुओ के अवयवो (का सयोग करके उन) पर रग-बिरगे पख चित्रित कर दे जिसके फलस्वरूप अथ तो ऊपर सुन्दर नारी-रूप के विधान से हो परन्तु इति अधोभाग मे कुरूप मत्स्य की आकृति पर आकर हो जाये और तुम्हे एकात मे यह चित्र देखने का अवसर मिले तो बताओ मित्रो ! क्या तुम अपनी हँसी का सवरण कर सकोगे ?

अन्विति का महत्त्व

पिसो-कुलभूषण[1] मित्रो ! विश्वास करो, इस प्रकार का चित्र उस कविता से निकृष्टतर न होगा जिसमे (स्रष्टा द्वारा) भावित बिम्ब-विधान रुग्ण व्यक्ति के स्वप्नो की भाँति निस्सार हो और इसके फलस्वरूप जिसकी किसी भी एक आकृति का न सिर हो, न पैर—जिसमे अन्विति का तिरोभाव हो गया हो ।

तुम कहोगे—'चित्रकारो और कवियो को स्वेच्छाचरण की छूट सदा रही है ।' मै मानता हूँ, और यह स्वच्छन्दता मै अपने लिए चाहूँगा तथा दूसरो को देने के लिए भी तैयार हूँ परन्तु इस सीमा तक नही कि कोमल का कठोर से सयोग करा दिया जाये अथवा पक्षियो और भुजगो या मेमनो और चीतो को साथ-साथ रख दिया जाये ।

प्राय (ऐसा होता है कि) कोई कृति बडी गम्भीर-गरिमामय रीति से आरम्भ होती है जिससे उसके भावी विकास के सम्बन्ध मे

बडी-बडी आशाएँ बँधती है परन्तु उसमे दृष्टि आकर्षित करने वाले तथा रग को गहरा करने वाले एक-दो ही मनोरम स्थल होते है। उदाहरणार्थ, हमे 'डायना' के कुज और वेदी' के, 'सुरम्य खेतो मे से होकर धडधडा कर बहने वाली जलधार' के वर्णन मिलते है अथवा राइन (नदी) का या इन्द्रधनुष का चित्र मिलता है—किन्तु इन सब दृश्यो की कोई सगति नही होती। सम्भव है तुम्हे सरो का चित्र बनाना आता हो परन्तु जिस नाविक ने अपना चित्र उरेहने के लिए तुम्हे धन दिया है उसे ध्वस्त पोत से कूल की ओर पहुँचने के लिए जी-तोड परिश्रम करते हुए चित्रित करना हो तो तुम्हारा वह सरो-चित्रण-कौशल किस काम का ? उद्देश्य तो होता है मदिरा-पात्र बनाना परन्तु जब कुम्भकार का चक्र चलता है तो उस पर कुम्भ का निर्माण कैसे हो जाता है ? सक्षेप मे, अपना विषय जो चाहो रखो, बस, वह सरल और सगत होना चाहिए।

हे पिसो और पिसो के सुपुत्रो ! हम कवि प्राय 'शुद्ध' के सम्बन्ध मे अपनी धारणा के कारण भ्रान्त हो जाते है। मै अपना मन्तव्य सक्षेप मे प्रकट करने का प्रयास करता हूँ परन्तु हो जाता हूँ दुरूह, कोई अन्य कवि समगति होने का यत्न करता है पर अपनी प्राणवत्ता और ओज खो बैठता है, तीसरा भव्यता को अपना लक्ष्य बनाता है किन्तु शब्दाडम्बर मे उलझ कर रह जाता है, चौथा अति सावधानी के कारण तथा तूफान के भय से मानो जमीन पर रेंग कर चलता है। जिस विषय मे सहज एकरूपता है, उसे विविधता प्रदान करनें का प्रयास करने वाला—और इस प्रकार कृत्रिम प्रभाव उत्पन्न करने वाला (कवि)—उस व्यक्ति की भाँति है जो जलपरी को वन मे तथा वन्य वराह को जलतरगो पर चित्रित करता हो। यदि कलात्मक भावना का अभाव है तो केवल दोष-निवारण के प्रयत्न से कोई अन्य गम्भीरतर दोष उत्पन्न हो जाता है।

एमिलियन प्रशिक्षण-शाला[3] के निकट रहने वाला दरिद्र से दरिद्र कास्यकार भी कास्य-मूर्ति मे नखो का निरूपण कर देगा तथा लहराते केशो का अनुकरण भी कर देगा परन्तु वह अपने कार्य मे असफल ही रहेगा क्योकि वह सम्पूर्ण प्रतिमा का निर्माण नही कर सकता। अस्तु, यदि मै किसी कृति की रचना करना चाहूँ तो मै उस कास्यकार की भॉति बनना न चाहूँगा, जैसे कि मै अपने काले केश और श्याम नेत्रो की प्रशसा पाते रहने पर भी टेढी नाक लेकर जीना न चाहूँगा।

विषय-चयन

लेखक-वर्ग! ऐसा विषय चुनो जो तुम्हारी सामर्थ्य के भीतर हो, अच्छी तरह सोचो-विचारो कि तुम्हारे कन्धे कितना बोझ उठा सकते हैं, कितना नही। जो लेखक ठीक विषय का चयन कर लेता है, उसे सुष्ठु शब्द तथा स्वच्छ विन्यास मे कठिनाई नही होती। यदि मै गलती नही करता तो विन्यास की शक्ति और आकर्षण इसमे है कि जो कुछ एकदम कहा जाना हो वह एकदम कह दिया जाए और बहुत-सी बाते जो अभी न कही जानी हो वे स्थगित कर दी जाये। प्रस्तावित कविता के स्रष्टा को शब्द-चयन मे सावधानी और सुरुचि से काम लेना होगा, उसे एक शब्द का परिहार और दूसरे का स्वागत करना होगा। यदि कौशलपूर्ण विन्यास के द्वारा परिचित शब्द मे नूतनता का पुट लग जाये तो तुम्हारी अभिव्यजना प्रशसनीय होगी।

नयी शब्दावली प्रचलन

यदि सयोगवश किसी दुर्बोध विषय के अन्तर्गत अर्थ स्पष्ट करने के लिए नए शब्दो की आवश्यकता हो तो ऐसे शब्दो का निर्माण कर लेना भी उपयुक्त होगा जो कैथेजी[4] जैसे पुरातनपथी लोगो ने कभी सुने भी न हो। इस स्वातन्त्र्य का यदि दुरुपयोग न हो तो उसकी अनुज्ञा मिल सकेगी। यदि किसी ग्रीक सूत्र से ग्रहण किए गये हो तो नूतन तथा नवनिर्मित शब्द स्वीकार कर लिये जायेगे—परन्तु

शर्त यह है कि नये शब्दो का निर्माण कभी-कभी ही किया जाये। रोमी जनता के द्वारा कैसिलियस[५] और प्लौतुस[६] को वह विशेषाधिकार क्यो मिले जो विशेषाधिकार वर्जिल[७] और वैरियस[८] को नही मिला ? यदि मै अपनी शब्दावली मे एक-दो शब्दो की अभिवृद्धि कर लूँ तो मेरे प्रति रोष क्यो व्यक्त किया जाता है जब कि कैटो[९] और एनियस[१०] की रचनाओ ने मातृभाषा को समृद्ध बनाया है और पदार्थो के नये नामो का प्रसार किया है ? युग की छाप जिन शब्दो पर लगी हुई है उनके प्रचलन की सदा अनुज्ञा रही है और सदा रहेगी।

जैसे प्रत्येक वर्ष के अन्त मे वन मे पुराने पत्ते झड जाते है और नये आ जाते है इसी प्रकार पुराने शब्द पहले मरते है। पुरानी पीढी समाप्त हो जाती है, युवको की भाँति नवजात शब्द पनपते-बढते है। हमे और हमारी कृतियो दोनो को ही काल-कवलित होना है। यदि समुद्र को स्थल-सीमा मे ले आया जाये और वह उत्तारी हवाओ से हमारे पोतो की रक्षा करने लगे—और यह कार्य कोई नृपति ही सम्पन्न कर सकता है—तो क्या हुआ ? यदि चिरकाल से अनुर्वर और केवल नाव्य दलदली भूमि की छाती पर हल की नोक सक्रिय हो उठे और वह आस-पास के प्रदेशो के लिए अन्न-सम्भरण करने लगे तो क्या ? अथवा शस्य-विनाशक नदी अपनी धार बदल कर नयी मगलकारी दिशा मे प्रवाहित हो उठे तो क्या ?—मर्त्य प्राणी के हाथ से निर्मित सभी कुछ विनाश को प्राप्त होगा शब्द का गौरव और आकर्षण तो कभी अक्षुण्ण रह ही नही सकता। प्रचलन के प्रताप से चिरकाल से अप्रयुक्त अनेक शब्द पुनर्जीवित होगे, और आज जो अनेक शब्द अति समादृत है वे विलुप्त हो जायेगे—यह प्रचलन ही भाषा का अधीश्वर, नियामक और प्रमाण है।

राजाओ और पराक्रमी नायको के कृत्यो तथा युद्ध की विषाद-कथा के आख्यान के लिए उपयुक्त छन्द कौन-सा है—इसका दिग्दर्शन हमे होमेरस[11] (होमर) ने करा दिया है। विषम

छन्द

युग्मको मे सर्वप्रथम क्रन्दन का स्वर मुखरित हुआ, तदनन्तर सफल प्रेमी का आह्लाद। परन्तु इन रुचिर छन्दो का आविष्कर्ता कौन था ?—इस पर आलोचको मे मतभेद है और यह प्रश्न अब भी विवादास्पद है।

रोष ने आर्खिलोकस[12] को उसके अपने सहज साधन लघु-गुरु-द्विमात्रिक छन्द* से सम्पन्न किया। कामदी और भव्य त्रासदी ने इस छन्द को अपनाया क्योकि वह सवाद के उपयुक्त है, सामाजिको के कोलाहल को शात करने की उसमे शक्ति है और कार्य-व्यापार के प्रतिनिधान के लिए वह सहज अनुकूल है।

कला की देवी ने देवताओ एव पराक्रमी वीरो के, सर्वश्रेष्ठ मुक्केबाज के, विजयी अश्व के, प्रेमियो की अतृप्त लालसा के तथा चिन्ता-निवारक चषक के स्तवन का दायित्व वीणा पर डाल दिया है।

प्रतिभाजन्य कृतियो मे विषय के और सूक्ष्म शैली-भेदो के स्पष्ट अन्तर हुआ करते है। यदि अज्ञानवश मै इनका निर्वाह नही कर पाता हूँ तो मुझे 'कवि' कहकर समादृत क्यो किया जाये ? झूठी लज्जा के वश मै ज्ञान की अपेक्षा अज्ञान को

शैली-भेद

क्यो अच्छा समझता हूँ ? जो विषय कामदी के उपयुक्त है उसे त्रासदीय छन्द मे नही बाँधा जा सकता। थ्युएस्तेस[13] के भोज का वर्णन दैनिक जीवन की भाषा मे नही हो सकता यद्यपि वह कामदी के सर्वथा उपयुक्त होती है। कभी-कभी कामदी के स्वर का भी उन्नयन हो जाता है (जैसे जब) क्रुद्ध ख्रेमेस[14] गरजता है और अपनी स्फीत वाणी मे अनर्गल प्रलाप करता है। इसी प्रकार कभी-कभी त्रासदी मे तेलेफुस[15] अथवा पेलेउस[16] अपना दुःख गद्य की भाषा मे व्यक्त करते है—अकिचन और निर्वासित

*Iambic metre

अवस्था मे अपनी करुण कथा से सामाजिको के मर्म का स्पर्श करने के लिए वे अपने अतिरंजित वर्णनो और आडम्बरपूर्ण शब्दो का परित्याग कर देते है।

भावानुभूति और अभिव्यजना

कविताओ का सुन्दर होना ही पर्याप्त नही, वे आकर्षक भी होनी चाहिए—उनमे ऐसी शक्ति होनी चाहिए जो श्रोता के मन को जिधर चाहे खीच ले। मानव-मुख मुस्कराहट का उत्तर मुस्कराहट से देता है, अश्रुओ से उसके नेत्रो मे अश्रुओ का उद्रेक होता है। यदि तुम मुझे रुलाना चाहो तो पहले तुम्हारे अन्तर मे दुख की अनुभूति होनी चाहिए, तभी, तेलेफुस अथवा पेलेउस ! तुम्हारा दुर्भाग्य मेरे मर्म का स्पर्श कर सकेगा। यदि तुम्हारी भूमिका पात्रानुकूल नही तो मुझे या तो नीद आ जायेगी या हँसी।

शोकार्त्त व्यक्ति के मुख से दुखपूर्ण शब्द शोभा देते है और क्रुद्ध व्यक्ति के मुख से रोषपूर्ण शब्द। प्रफुल्लमन व्यक्ति के मुख से परिहासपूर्ण शब्द अच्छे लगते है और परुष शब्द गम्भीर मुख के उपयुक्त होते है। प्रत्येक परिस्थिति को सहने के लिए प्रकृति पहले हमारे अतरग भावो को ढालती है। वह हमे या तो आह्लाद की ओर प्रवृत्त करती है या रोष की ओर अथवा मन को अवसाद से भर देती है और घोर वेदना से आच्छन्न कर देती है। तब वाणी की सहायता से वह भाव का अभिव्यजन करती है।

स्थिति और वक्ता का सामजस्य

यदि वक्ता के शब्द उसकी परिस्थिति के अनुकूल नही तो सम्पूर्ण रोमवासी—उच्च वर्ग के हो या निम्न वर्ग के—उस पर जी खोल कर हँसेगे। वक्ता देवता है या उपदेवता, वृद्ध पुरुष है अथवा यौवन के प्रथम प्रवाह मे उत्सिक्त किशोर, धन-सम्पन्ना रमणी है अथवा वाचाल परि-चारिका, पर्यटनशील व्यापारी है अथवा धरती का पुत्र कृषक, कोल्चियाई[१७] है अथवा असीरियाई,[१८] थेबेस[१९] का निवासी

है या आरगौस[20] का—इससे उनकी वाणी मे आकाश-पाताल का अन्तर आ जायेगा।

तुम्हे या तो परम्परा का अनुसरण करना चाहिए या फिर कोई नवीन आविष्कार करो तो उसमे सगति होनी चाहिए। यदि नाटच-रचना करते समय तुम प्रख्यात अखिल्लेस[21] को रगमच पर लाओ तो उसे अधीर, रोषशील, निर्दय और हिस्र बनाओ, वह समस्त नियमो का तिरस्कार करे जैसे वे उसके लिए न बने हो। वह खड्ग को ही एकमात्र निर्णायक स्वीकार करे। इसी प्रकार मेदेआ[22] को ऊर्जितमन, अजेय, ईनो[23] को साश्रु, इक्सिओन[24] को विश्वासघाती, इओ[25] को भ्रमणशील और ओरेस्तेस[26] को विषण्ण चित्रित करो।

निरूपण-संगति

यदि तुम अछूते विषय का रगमच पर उपस्थापन करो और तुममे नये चरित्र के सृजन का साहस हो तो उसे ऐसा बनाओ कि प्रथम दृश्य मे वह जैसा हो वैसा ही अन्त तक बना रहे अर्थात् उसके चरित्र-निरूपण मे आद्यन्त एक सगति रहे। पिष्टपेषित विषय मे मौलिकता का उद्भावन कठिन कार्य है। ऐसा विषय, जो अज्ञात हो और जिस पर अब तक कुछ न लिखा गया हो, अपनाने की अपेक्षा ईलिअद[27] को नाटच-रूप देना अधिक बुद्धिमानी का कार्य है। मेरा लक्ष्य तो परिमित सामग्री मे से कौशलपूर्वक ऐसी कविता का निर्माण कर लेना है कि उस चमत्कार का सभी अनुकरण करना चाहे परन्तु उनका समस्त परिश्रम और प्रयास वृथा रहे। क्रमबद्धता एव सुविन्यास की ऐसी शक्ति है! साधारण वस्तुओ मे ऐसा आकर्षण होता है! यदि तुम सरलता और सस्तेपन के फेर मे न पडो, यदि तुम अति निष्ठावान अनुवादक बनकर मूल कृति का शब्द-प्रतिशब्द अनुवाद न करने लगो, यदि तुम मात्र प्रतिलिपिकार बन कर किसी ऐसे सकीर्ण गर्त मे न कूद पडो जहाँ से नैराश्य या स्वय कार्य की परिस्थितियाँ तुम्हारा निकलना असम्भव कर दे तो

'पूर्व-उपस्थापित' सामान्य विषय भी तुम्हारे अपने हो जायेगे ।

तुम्हे अपनी कृति प्राचीन चक्रिक कवियो* की भाँति ऐसी भूमिका बाँध कर भी आरम्भ नही करनी चाहिए कि 'मै प्रिअम[२८] के भाग्य और त्रॉय के विश्व-विख्यात युद्ध का आख्यान करूँगा ।' ऐसा लेखक इन बडे बोलो के अनुरूप क्या रच पायेगा ! यहाँ तो 'खोदा पहाड निकली चुहिया' वाली उक्ति ही चरितार्थ हो कर रह जायेगी । इसकी अपेक्षा उस कवि की प्रस्तावना कितनी अच्छी है जिसके प्रत्येक शब्द मे सुरुचि का आभास मिलता है 'हे काव्य की देवी ! मुझे उस वीर की कथा सुनाओ जिसने त्रॉय-विजय के पश्चात् मानव-जाति के आचार-विचार और नगरो का सर्वेक्षण किया ।'

उसका उद्देश्य आग की लपट से धुआँ नही प्रत्युत धुएँ से आलोक ग्रहण करना है और तत्पश्चात् विचित्र और अद्भुत सृष्टि हमारे सम्मुख उपस्थित करना—जैसे अतिफतेस[२९] और क्युक्लोप्स[३०], स्क्युल्ला[३१] और खार्युबदिस[३२] । वह दिओमेदेस[३३] के प्रत्यावर्तन और मेलेअजेर[३४] की मृत्यु के बीच कार्य-कारण शृ खला नही ढूँढता है, न त्रॉय-युद्ध का कारण जुडवॉ अण्डो को बताता है । वह तो बडे वेग से चरम बिदु की ओर जाता है और श्रोता को सीधा कथा के बीच मे ले पहुँचता है मानो (भावक को वह) पहले ही से ज्ञात हो ।

जिसमे वह अपने स्पर्श से दीप्ति पैदा नही कर सकता उसे वह छोड देता है । वह काल्पनिक कथा का उपयोग इस तरह करता है, सत्य और मिथ्या का ऐसा समन्वय करता है कि आरम्भ, मध्य और अन्त सब से एक ही स्वर मुखरित हो उठे ।

---

* Cyclic Poets—इतिहास अथवा दन्तकथाओ में वर्णित किसी व्यक्ति-विशेष अथवा घटना-विशेष को लेकर कविताओ की शृ खला रचने वाले कवि । इनके प्रमुख तत्त्व तो प्राय भिन्न रहते थे पर उपस्थापन-पद्धति एक सी थी—होमर और वर्जिल के आदर्श के अनुकूल ।

अब सुनो कि मै और सम्पूर्ण श्रोता-जगत् क्या प्रत्याशा करते है। यदि तुम चाहते हो कि तुम्हे सहृदय श्रोता मिले जो यवनिका-पतन और 'करतल-ध्वनि' का आह्वान होने तक शातिपूर्वक बैठे रहे तो तुम्हे प्रत्येक आयु की विशिष्टताओ का ध्यान रखना होगा और आयु के साथ बदलते हुए स्वभावो को उपयुक्त आचार-व्यवहार से समन्वित करना होगा।

चारित्र्य-अध्ययन

जिस बच्चे ने अभी-अभी बोलना और विश्वासपूर्वक पॉव जमाना सीखा है वह अपने समवयस्को के साथ खेलना चाहता है, उसे जितनी जल्दी क्रोध आता है उतनी ही जल्दी वह शात हो जाता है, उसकी मन स्थिति थोडी-थोडी देर बाद बदलती रहती है। किशोर अपने शिक्षक की दृष्टि से ओझल हो जाने पर घोडो, शिकारी कुत्तो और घास से भरे आतप्त मैदानो मे रमता है—वह कुमार्ग की ओर मोम की भॉति आसानी से मुड सकता है, सत्परामर्शदाताओ के प्रति उसका व्यवहार रूक्ष होता है, अपने हितो के प्रति वह जागरूक नही होता, धन का अपव्यय करने की ओर उसकी प्रवृत्ति होती है, वह अत्यत उत्साही एव भाव-प्रवण होता है, उसके आकर्षण निरतर परिवर्तित होते रहते है। यौवन के साथ रुचियॉ बदल जाती है अब उसका लक्ष्य धन और मित्रता हो जाता है, उसके अन्तर मे लालसा बलवती हो उठती है और वह ऐसा काम करने से बचता है जिसका बाद मे उसे परिशोध करना पडे।

वार्धक्य की असुविधाएँ अनेक है। इसका कारण कुछ तो यह है कि वृद्ध पुरुष सदा सचय मे निरत रहता है, अपनी लब्धियो के फलस्वरूप उसकी चित्तवृत्तियॉ और सकीर्ण हो जाती है और वह उनके उपभोग का साहस नही कर पाता, और कुछ यह कि वह प्रत्येक कार्य बडे डरते-डरते और उदासीन भाव से सम्पन्न करता है, उसमे सकल्प का अभाव होता है। वह मदाश, आलसी, दीर्घ-जीवन-कामी, प्रतीपवृत्ति, असतुष्ट, 'जब मै लडका था' कहकर

अतीत जीवन के गीत गाने वाला, नई पीढी का निदक और अभिशसक होता है। कोई वर्ष हमारे लिए वरदान लेकर आता है और कोई हमे उनसे वचित कर जाता है। स्मरण रखो, कही ऐसा न हो कि तुम वृद्ध की भूमिका युवक को दे दो अथवा वयस्क पुरुष की भूमिका बालक को दे दो। हमारी बुद्धिमानी इसी मे है कि हम जीवन के प्रत्येक भाग के अनुरूप उपयुक्त गुणो का विधान करे।

उपस्थापन-कौशल

कोई कार्य-व्यापार या तो रगमच पर सम्पन्न होता है अथवा उसका वर्णन कर दिया जाता है। दर्शक अपने विश्वासी नेत्रो के सम्मुख जो कुछ पाता है उसका उसके मन पर जितना सजीव प्रभाव पडता है उतना कानो से सुनी हुई बात का नही। तथापि तुम ऐसी घटनाएँ रगमच पर उपस्थापित मत करो जो परोक्ष मे सम्पन्न होनी चाहिए और बहुत-सी ऐसी बाते भी दर्शक के सम्मुख मत लाओ जिनका वर्णन रगमच पर क्रमश अभिनेता के द्वारा किया जाये—उदाहरण के लिए, यह आवश्यक नही कि मेदेआ अपने लडको की हत्या दर्शको के सम्मुख करे अथवा क्रूर अत्रेउस[३५] मानव-मास पकाये, प्रोकने[३६] के पक्षी बनने या कादमस[३७] के सर्प मे परिणत होने की घटना भी रगमच पर प्रस्तुत करना उचित नही। इस प्रकार के जो दृश्य हठात् मेरे सामने लाये जायेगे वे मेरे मन मे अविश्वास और विरक्ति ही जगा सकते है।

यदि किसी नाटक को लोकप्रिय बनाना हो जिससे कि एक बार उपस्थापित किए जाने के बाद उसकी बार-बार माँग हो तो उसमे पॉच अक होने चाहिए—न इससे कम, न अधिक। किसी देवता की अवतारणा मच पर नही करानी चाहिए जब तक कि ऐसी ही समस्या पैदा न हो जाये जिसके लिए वैसे समाधानकर्ता की आवश्यकता हो, और न किसी वृन्दगायक को ही मच

पर आकर बोलना चाहिए । वृंदगायक को सोत्साह एक अभिनेता की भूमिका और कर्त्तव्य का निर्वाह करना चाहिए और अको के बीच मे ऐसा कोई गीत नही गाना चाहिए जो कार्य-व्यापार को आगे न बढाता हो और जिसके लिए कथानक मे सहज स्थान न हो । उसे सत् का उन्नयन करना चाहिए और शुभ परामर्श देना चाहिए , सरोष का नियत्रण और पाप-भीरु का समर्थन करना चाहिए, उसे सादा भोजन करना चाहिए, न्याय के वरदान, नियम और शांति की उन्मुक्त भाव से प्रशसा करना चाहिए । वह रहस्यो को अपने तक सीमित रखे और ईश्वर से यह प्रार्थना करे कि सम्पन्नता दु खियो की सगिनी बने और गर्विष्ठ का परित्याग करे ।

सगीत

एक समय था जब वशी पीतल से मढी नही जाती थी और न उस समय वह तूर्य की प्रतिद्वन्द्विनी थी वरन् सादा और मृदुल हुआ करती थी तथा उसमे छिद्र भी बहुत कम थे । वह वृन्दगायन का साथ देती थी और उसे स्वर प्रदान करती थी । तब प्रेक्षागृह जनाकीर्ण न होता था, उपस्थित सामाजिको को उँगलियो पर गिना जा सकता था—वे मितव्ययी, शालीन और ईमानदार लोग थे । उस वातावरण को वशी सगीत की ध्वनियो से आपूरित कर देती थी । परन्तु जब विजेता राष्ट्रो ने अपनी सीमाओ का विस्तार करना आरम्भ किया और उनके नगरो के चतुर्दिक् प्राचीरे दृढतर होती गयी और जब सवेरे-सवेरे उत्सव आदि पर लोगो को सार्वजनिक रूप से सुरापान करके अपनी तृषा शात करने का अवसर मिलने लगा तो लय और धुन को भी अधिक छूट मिलने लगी । उत्सव मनाने के लिए निकला हुआ अशिक्षित ग्रामीण जब किसी नागरिक के सग आ बैठे, अशिष्ट विदूषक और अभिजात का जब ऐसा सयोग हो जाये—तब तुम कैसी रुचि की आशा कर सकते हो ? इसी प्रकार वशीवादक ने अपनी पुरातन कला मे गति एव अयत मुद्राओ का समावेश और

कर लिया, मच पर जब वह रोब से घूमता तो उसका उत्तरीय पीछे लटकता रहता। धीर-गम्भीर वीणा मे भी नये स्वर जोड दिए गए। साहसपूर्ण वाग्मिता के साथ अश्रुतपूर्व भाषा अस्तित्व मे आयी, अदृष्ट का पूर्वकथन करने वाली नीतिपूर्ण उक्तियाँ देल्फी की आप्त-वाणी[३८] से होड लेने लगी।

औचित्य-विचार

जो कभी एक साधारण अजा के लिए त्रासदीय पद्य मे प्रतियोगिता करता था उसने शीघ्र ही अशिष्ट व्यग्य को और भी निरावृत कर डाला और वह अपनी गरिमा की हानि किए बिना भोडे परिहास पर उतर आया। उसने अपने मन मे सोचा कि जो दर्शक अभी-अभी बलिदान देख कर आ रहा है, मदिरोन्मत्त और अनियन्त्रित है, उसे बाँध रखने के लिए नूतन का आकर्षण और प्रलोभन आवश्यक है।

अपने प्रेक्षको के सम्मुख वन-देवताओ का हास्य-विनोद इस प्रकार प्रस्तुत करना चाहिए, गाम्भीर्य से उल्लास में परिवर्तन इस प्रकार घटित होना चाहिए कि जो देवता या वीर नायक मच पर आये—और अब तो वे अपने राजोचित स्वर्णिम और नील-लोहित वस्त्रो मे अलग ही चमकते है—वे अपने सवादो मे सरायो मे होने वाली बातचीत के अशिष्ट धरातल पर न उतर आये। और ऐसा भी न हो कि धरती से बचने के प्रयत्न मे वे मेघो और शून्य मे उलझ कर रह जाये। तुच्छ पद्य का उच्चार त्रासदी की गरिमा के विरुद्ध है। जैसे किसी धीर प्रौढा से किसी पर्व के अवसर पर नृत्य करने के लिए कहा जाये, वैसे ही यदि काव्य की देवी को प्रगल्भ वन-देवताओ के बीच विचरना पडे तो वह उनके और अपने बीच एक उचित दूरी बनाये रखेगी।

यदि मै व्यग्य-नाटक लिखूँ तो मै केवल घिसे-पिटे और तुच्छ

शब्दो का चयन नही करूँगा और न त्रासदीय पदावली से इतना भिन्न होने का प्रयत्न करूँगा कि यह पता ही न चले कि वक्ता दावुस है या साहसी परिचारिका प्युथिग्रस--जिसने अपने स्वामी को चकमा देकर एक टेलेन्ट* हस्तगत कर लिया था अथवा एक देवता-विशेष का पथ-प्रदर्शक, मित्र और अभिभावक सिनेलुस[३९]।

पदावली

मेरे मतानुसार जब वन-देवताओ को मच पर लाया जाये तो उन्हे सतर्क रहना चाहिए कि वे प्रेम की व्यथा मे नगर के सस्कृत युवको की भाषा का प्रयोग न करे और न अश्लील और लज्जाजनक परिहास करे क्योकि सामन्त, अभिजात और धनाढ्य-जन इन दोषो को अक्षम्य मानते है। तली हुई मटर के खरीदार जिन-जिन चीजो को पसन्द करते है उन सभी की वे प्रशसा नही करते और न उन्हे पुरस्कृत कर सकते है।

जब एक ह्रस्व मात्रा के अनन्तर दीर्घ मात्रा का विधान होता है तो उसे लघु-गुरु द्विमात्रिक (आयम्बिक) चरण कहते है अर्थात् सजीव चरण। इसीलिए लघु-गुरु क्रम से आने वाली द्विमात्रिक पक्तियो को त्रिपदी के नाम से अभिहित किया गया क्योकि आदि से अन्त तक एकरूप बने रह कर उनमे छह ताल होते है। कुछ ही समय पूर्व अधिक मन्द और सतुलित गति उत्पन्न करने के उद्देश्य से लघु-गुरु द्विमात्रिक (आयम्बस) ने स्थिर गुरु-गुरु द्विमात्रिक को अपने परम्परागत अधिकारो का भागी बना लिया--इस शर्त पर कि वह अपना स्थान मित्रतापूर्वक दूसरे और चौथे चरण मे बनाये रहेगा। अक्किग्रस[४०] की त्रिपदियो मे--जिनका इतना गुणगान किया जाता है--लघु-गुरु द्विमात्रिक चरण बहुत कम उपलब्ध होता है। इसी के अभाव के कारण एनियस की मच पर उपस्थापित विचारपूर्ण पक्तियो के विरुद्ध यह

छन्द और लय

* एक प्राचीन मुद्रा-विशेष।

गम्भीर आक्षेप किया गया कि उनकी रचना मे अति शीघ्रता और असावधानी से काम लिया गया है और उससे भी आगे यह कि उनमे काव्य-कला के अज्ञान का परिचय मिलता है।

सदोष लय को पकड पाना प्रत्येक आलोचक के बस की बात नही। और यह सत्य है कि रोमी कवियो को अनावश्यक स्वच्छन्दता मिली है। इसीलिए क्या मुझे निर्बन्ध विचरण करना चाहिए और नियम भग करने चाहिए ? या मै यह समझ लूँ कि लोग मेरी त्रुटियो को देख लेगे ?—और इसीलिए उनका परिहार करूँ और सावधानी से ऐसी सीमा मे रहूँ जहाँ मुझे क्षमा मिल जायेगी। यदि ऐसा है तो मै निन्दा से बच निकलने मे अवश्य सफल हुआ हूँ पर प्रशसा का पात्र मै निश्चय ही नही।

मेरे मित्रो ! क्या तुम ग्रीक की महान् कृतियो का अध्ययन करते हो ? तुम दिन-रात उन्ही मे मग्न रहो। तुम कहते हो, कोई उत्तर देता है 'परन्तु आपके पूर्वज तो प्लौतुस के छन्दो और वैदग्ध्य की प्रशसा किया करते थे।' यह सत्य है, उन्होने दोनो की ही प्रशसा करके अत्यधिक 'सहिष्णुता' का परिचय दिया है—'मूर्खता' तो मै नही कहूँगा। यदि मै और तुम अश्लीलता एव वैदग्ध्य मे भेद करना जानते है और हमारी उँगलियाँ और कान इतने सतर्क और अभ्यस्त है कि सही स्वर-सक्रम को पकड सके तो यह स्पष्ट है।

नाटक का आविष्कार

कहते है थेसपिस[४१] ने त्रासदी का अन्वेषण किया—उससे पूर्व यह काव्य-रूप अज्ञात था—और वह अपनी नाट्य कृतियो को ठेलो मे रखकर घूमता फिरा कि मदिरा की तलछट मुँह पर मल कर अभिनेता उनका गायन और अभिनय करे। उसके पश्चात् ऐस्ख्युलस[४२] ने छद्ममुख और अभिराम वस्त्रो का आविष्कार किया। उसने छोटे-छोटे तख्तो पर रगमच बनाया, अपने सहयोगियो को साडम्बर भाषा बोलना

सिखाया और बस्किन (विशेष प्रकार के जूते जिन्हे त्रासदी-अभिनेता धारण करते थे) पहन कर शान से चलना सिखाया। फिर प्राचीन कामदी आयी जिसकी बडी प्रशसा हुई। परन्तु उसे मिली हुई स्वतन्त्रता उच्छृखलता और उद्दण्डता के धरातल पर उतर आयी जिसे नियम द्वारा मर्यादित करना आवश्यक हो गया। नियम के सम्मुख उसने समर्पण कर दिया और वृन्दगायन अपनी आघात-शक्ति से वचित होकर मौन हो गया—यह उसके लिए लज्जा की बात थी।

हमारे अपने कवियो ने किसी शैली को बिना आजमाये नही छोडा। जब उन्होने साहसपूर्वक यूनान के चरण-चिह्नो से हट कर—त्रासदी और कामदी दोनो मे ही हमारे राष्ट्रीय कृत्यो की प्रशस्ति गायी तो उन्हे बडा यश मिला। यदि समस्त रोमी कवियो को शोधन के श्रम और देरी से घृणा न होती तो शस्त्र के पराक्रम और चमत्कार के कारण उसे जितना यश मिला है उससे किसी तरह कम साहित्य के कारण न मिलता। हे नूमा[४३]—वशावतस पिसो एव पिसो के आत्मजो! जो कविता काल की कर्तनी के आघात नही सह चुकी और कई बार निरसित नही हुई, जिसका बार-बार सँवार-सुधार कर पूर्ण सस्कार नही हुआ उसे तिरस्कार्य समझो।

कला : प्रतिभा

देमोक्रितुस[४४] का विश्वास है कि कला हीन है और प्रतिभा उससे कही श्रेयस्कर है। उसने समस्त प्रकृतिस्थ कवियो के लिए हेलीकोन[४५] के द्वार बन्द कर दिए है। अत अनेक ऐसे है जो न अपने नाखून काटते है, न दाढी बनाते है—वे एकान्तवास करते है और स्नान से दूर भागते है। (उनके विचार से) सत्य यह है कि वे कवि के यश और प्रतिफल की उपलब्धि तो ही कर सकते है यदि उन्होने अपने ऐसे सिर को—जिसका तीन अन्तिक्युरस[४६] भी उपचार न कर सके—कभी नापित लिसिनस को न सौपा हो।

मै भी कैसा मूर्ख हूँ कि वसन्त के आगमन पर अपने आपको पित्त से (और तज्जन्य अवसाद से) मुक्त कर लेता हूँ। अगर वैसा न होता तो कौन मुझ से अच्छी कविता लिखता! पर उतना मूल्य किसी तरह चुकाया नही जा सकता। अत मै सान रखने के पत्थर की भाँति बनूँगा जो भले ही स्वय काट नही सकता पर लोहे को पैना बना सकता है। यद्यपि मै काव्य-रचना नही करता पर मै कवि को उसका कर्त्तव्य-कर्म सिखाऊँगा, उसे बताऊँगा कि वह कहाँ से अपने उपादान जुटा सकता है, कवि को कैसे अभ्यस्त किया जा सकता है, कैसे ढाला जा सकता है, क्या उसे शोभा देता है, क्या नही, ज्ञान का मार्ग कौन-सा है, त्रुटियो का कौन-सा!

सद्विवेक

समस्त उत्कृष्ट साहित्य का रहस्य है—सजग विवेक-शक्ति। तथ्य तुम्हे सुकरात[४७] एव उनके अनुयायियो की रचनाओ से उपलब्ध हो जायेगे। उन्हे समुचित परिपार्श्व मे रख कर समझ लो, शब्द स्वत आयेगे। यदि कोई व्यक्ति एक बार मित्र एव जन्मभूमि के प्रति अपना कर्त्तव्य समझ ले, यह जान ले कि उसके प्रेम पर माता-पिता का, भाई का, अतिथि का क्या उचित अधिकार है, सासदिक अथवा न्यायाधीश के दायित्व क्या है और युद्ध-क्षेत्र मे भेजे गये सेनापति का क्या कर्तव्य है—तो वह यह अच्छी तरह समझ जायेगा कि प्रत्येक चरित्र की उपयुक्त भूमिका कैसे स्थिर की जाये और इस कार्य मे कोई भूल नही करेगा। कुशल अनुकर्त्ता से मेरा अनुरोध है कि वह सच्चे प्रतिमानो के लिए जीवन और नीति का अध्ययन करे और वही से जीवन की सहज भाषा ग्रहण करे। कभी-कभी कोई नाट्य-कृति साधारण तत्त्वो के कुशल आयोजन और सुष्ठु चरित्र-निरूपण के द्वारा 'निरर्थक पक्तियो तथा मधुर किन्तु तुच्छ रचनाओ की अपेक्षा' सामाजिको को अधिक आह्लादित करती है और उनकी चित्तवृत्तियो को रमा लेती है—भले ही उसमे आकर्षण-शक्ति और काव्य-कौशल

का अभाव हो।

यूनानियो को, केवल यश कामी यूनानियो को ही, काव्य की देवी ने प्रत्युत्पन्न मति और सस्कृत वाणी का वरदान दिया है। हमारे रोमी युवक बडे लम्बे अभ्यास के बाद यही सीख पाते है कि शिलिग को सौ भागो मे कैसे विभाजित किया जाये 'इधर आओ, बालक ऐलबिनस ! और यह बताओ कि अगर छह पेस मे से एक पेनी निकाल ले तो क्या बाकी बचेगा। तुम्हे यह मालूम होना चाहिए।' 'पाँच पेस।' 'शाबाश ! किसी दिन तुम जरूर बडे आदमी बनोगे। अच्छा, अब एक पेनी जोडो और बताओ कि क्या योग होगा'। 'सात पेस'। अरे ! जब एक बार लालसा का यह घुन लग जाये, धन का यह मोह आत्मा को कलुषित कर दे तब क्या हम ऐसी कविताओ की रचना की आशा कर सकते है जो चिकनी मजूषाओ मे देवदारु तेल मे सुरक्षित रखने योग्य हो ?

कवि का उद्देश्य या तो उपयोगिता होता है या आह्लाद या फिर वह उपयोगी और आह्लाददायी का एक ही मे समन्वय कर देता है। तुम्हारी सम्प्रेषणीय शिक्षा चाहे कुछ भी हो, तुम्हे अपनी बात सक्षेप मे कहनी चाहिए जिससे कि श्रोता तुम्हारे मन्तव्य को तुरन्त ग्रहण कर सके और उसे निष्ठापूर्वक अपने मन मे धारण कर सके ! श्रोता की स्मृति के भरे हुए पात्र से प्रत्येक अनावश्यक शब्द बह जाता है। आह्लाद प्रदान करने के लिए जो कल्पनात्मक रचना की जाये वह यथार्थ जगत के अत्यन्त निकट होनी चाहिए, ऐसा न हो कि तुम्हारी नाट्य-कृति 'सामाजिक' से असीम प्रत्यय की अपेक्षा करे—उदाहरण के लिए, राक्षसी लामिया के खा लेने पर उसके पेट से किसी बच्चे के जीवित निकल आने का वर्णन। वृद्धजन ऐसी कृति की निदा करते है जिसमे कोई उपयोगी शिक्षा न हो, हमारे तरुण अभिजात-जन गम्भीर पक्तियो को पसद नही करते है। अत जो कवि उपयोगी और मधुर

काव्य-प्रयोजन

का सश्लेषण करता है वही सफल होता है क्योकि वह अपने पाठकं को आह्लादित करता है और शिक्षित भी। ऐसी कृति ही प्रकाशक को भी धनवान बनाती है, विदेशो को भी प्रेषित की जाती है और अपने रचयिता के यश को भी स्थायित्व प्रदान करती है।

क्षम्य दोष

तथापि कुछ दोष ऐसे है जिन्हे हम सहर्ष देखा-अनदेखा कर सकते है। तार से सदा वही स्वर नही निकलता जो हमारे मन और हाथ का अभीष्ट हो। हम मद्र स्वर की अपेक्षा करते है और निकलता है तीव्र। बाण भी सदा ही लक्ष्य को नही बेध पाता। परन्तु जब किसी कविता का अधिकाश सुन्दर हो तो मै उन कतिपय साधारण दोषो पर अटकूँगा नही जो असावधानी के कारण आ गये हो अथवा जिनके प्रति कवि मानव-स्वभाव की सहज दुर्बलता के कारण सतर्क न रह पाया हो।

तब हमारा निष्कर्ष क्या है? कोई प्रतिलिपिकार निरतर चेतावनी पाने पर भी यदि बार-बार एक ही भूल की आवृत्ति करता है तो उसे कोई प्रश्रय नही मिल सकता। कोई वीणावादक यदि बार-बार एक ही तार पर आकर बहक जाता है तो उसका उपहास किया जाता है। इसी प्रकार मै असस्कृत कवि को खोएरिलस[४८] के साथ रखता हूँ जिसकी लेखनी से यदा-कदा निकली हुई सुन्दर पक्तियाँ आश्चर्यजनक होते हुए भी हमे केवल हँसा पाती है। और क्या जहाँ होमर (की कविता) शिथिल हो उठे वहाँ मुझे रोष करना चाहिए!

'हाँ, परन्तु लम्बी कृति मे लेखक के मन का निद्राच्छन्न हो उठना स्वाभाविक ही है। कविता चित्रकारी की भाँति होती है। एक कृति निकट से देखने पर आप के मन को मोहती है, दूसरी दूर से देखने पर। एक मध्यम प्रकाश मे अच्छी लगती है दूसरी आलोचको की दोष-दर्शन-भावना को चुनौती देती हुई प्रखर आलोक मे शोभा देती है। कोई चित्र एक बार देखने पर अच्छा लगता है,

कोई बार-बार देखने पर ।'

हे पिसो-कुल के आशा-दीप ! यद्यपि तुम्हारे निर्णय को सही मार्ग पर निर्देशित करने के लिए तुम्हारे पिता विद्यमान है और तुम स्वय भी सुरुचि-सम्पन्न हो, तथापि मेरी यह सीख सुन लो और गाँठ बाँध लो कि साधारणता केवल सीमित क्षेत्रो मे ही सह्य या क्षम्य होती है। कोई अधिवक्ता या दूसरी श्रेणी का कोई वकील वाग्मिता की दृष्टि से मेस्साला[४६] के समकक्ष न हो, न उसमे कसेलियस[५०] के बराबर ज्ञान हो फिर भी उसका अपना महत्व है परन्तु कवियो मे साधारणता को कभी किसी ने सहन नही किया है—न देवताओ ने, न मनुष्य ने और न पुस्तक-विक्रेताओ ने। जैसे किसी सुखद प्रीतिभोज मे अशोभन सगीत, निकृष्ट सुगन्धि और विशुद्ध मधु मे मिश्रित पोस्त के बीज हमारी रुचि पर आघात करते है क्योकि इनके बिना भी भोज सम्पन्न हो सकता था, इसी तरह आह्लाद प्रदान करने के लिए रची गई कविता यदि उत्कृष्ट धरातल से थोडी-सी नीचे रह जाती है तो वह एकदम रसातल को ही चली जाती है। जो खेलो मे अनाडी होता है वह प्रतियोगिता के लिए मैदान मे नही उतरता, अगर वह गेंद, क्रीडा-चक्र, वलय आदि के सम्बन्ध मे कुछ नही जानता तो दूर रहेगा—इस डर से कि दर्शको की अपार भीड कही उसकी हँसी न उडाये और उन्हे कोई रोक भी न सके। परन्तु जो कवि नही, काव्य-रचना का साहस वह भी करता है। 'और क्यो न करे ? क्या वह स्वतन्त्र नही ? कुलीन नही ? क्या उसकी आय किसी सामन्त के बराबर नही ? और वह नैतिक दोषो से मुक्त नही ?' मै जानता हूँ, तुम अपने 'अन्तरग गुणो के प्रतिकूल' न तो कुछ कहोगे, न करोगे—यह तुम्हारा निश्चय है और तुम्हारी सद्बुद्धि की प्रेरणा। तथापि यदि तुम कभी कोई रचना करो तो मेरा आग्रह है कि तुम उसे

साधारणता—अक्षम्य

पहले आलोचक माएसिउस[५१] को दिखाना, अपने पिता को दिखाना और मुझे दिखाना, और तब उस पाण्डुलिपि को अपनी मेज की दराज मे रख देना और दस वर्ष तक वही पडी रहने देना। अप्रकाशित का निरसन किया जा सकता है परन्तु जो शब्द एक बार मुँह से निकल गया वह वापस नही आ सकता।

कवि : मानव-उन्नायक

ओरफेउस[५२] ने—जो सत भी था और कवि भी—बर्बर वन्य जातियो का हत्या के कलुषित जीवन से उद्धार किया था इसीलिए किवदन्ती है कि उसने हिंस्र सिहो और चीतो को सधाया था। यह भी कहा जाता है थेबेस का सस्थापक अम्फीओन[५३] अपनी वीरणा के स्वर से शिलाओ मे गति भर देता था और अपनी प्रार्थना के जादू से उन्हे जहाँ चाहता ले जाता था। व्यक्ति और राज्य के बीच, पावन और साधारण के बीच सीमा-रेखा खीचना, नगरो का निर्माण करना, अनेकमुखी वासना को प्रतिबन्धित करना, विवाहितो के अधिकार निर्धारित करना, काष्ठखण्डो पर नियम अकित करना—यह पुराने कवियो की बुद्धिमत्ता थी। दिव्य कवियो और उनके गीतो को इस प्रकार यश और सम्मान प्राप्त होता था। उनके पश्चात् महामना होमर ने अपनी प्रभावशाली कला से पराक्रमी वीरो के चरित्र और उनके रोष का निरूपण किया, उधर त्युरतएउस[५४] ने अपने गीतो से वीर-हृदयो मे सामरिक कृत्यो की ज्योति जगाई। पद्य मे आप्त वचनो का उच्चार किया गया और जीवन का पथ प्रशस्त किया गया, उधर काव्य की तानो से सम्राटो का अनुग्रह प्राप्त किया गया और मानव के श्रम को मधुर बनाने के लिए पर्व नियत किए गये। यह मै इसलिए कह रहा हूँ कि तुम समझ लो कि प्रगीत की देवी तथा गीत के अधिष्ठाता अपोलो[५५] के लिए तुम्हे लज्जा अनुभव करने की आवश्यकता नही है।

अच्छी कविता की उद्भावना प्रतिभा (प्रकृति) से होती है या कला से ?—यह विवादास्पद बात है। जहाँ तक मेरा अपना विचार है मै तो बिना प्रतिभा के अध्ययन का और बिना अभ्यास के प्रतिभा का कोई उपयोग नही समझता। अत यह सत्य है कि उन्हे एक-दूसरे का सहयोग अपेक्षित होता है और वे पारस्परिक हित के लिए एक-दूसरे की सहायता करते है।

प्रतिभा अभ्यास

जो खिलाडी आज अपने चिर-अभिलषित लक्ष्य की ओर पहुँचने को आतुर है उसने बहुत-कुछ सहा होगा और बचपन मे बडे प्रयास किए होगे, उसने सर्दी और गर्मी झेली होगी, प्रमदा और मदिरा से दूर रहा होगा। जो वशी-वादक आज प्युथिआई प्रतियोगिताओ मे भाग लेता है वह कभी किसी गुरु का शिष्य भी रहा होगा और उसके सामने डर से काँपा होगा। आजकल लोग इतना कहना ही पर्याप्त समझते है 'मै विलक्षण कविताएँ रचता हूँ। जिसने आत्म-स्तुति नही की वह डूबा। मेरे लिए लज्जा की बात है कि और लोग मुझ से अच्छी कविताएँ लिखे और मुझे यह मानना पडे कि जो कुछ मैने कभी नही सीखा उसे मै सचमुच नही जानता।'

अभ्यास

जैसे नीलाम करने वाला आवाजे लगा-लगा कर अपनी चीजे खरीदने वालो की भीड लगा लेता है, इसी तरह उस कवि के–जो प्रचुर भूमि का स्वामी हो और जिसकी बहुत सारी पूँजी इधर-उधर ब्याज पर लगी हुई हो—इर्द-गिर्द अपने हित- साधन के लिए चाटुकार एकत्र हो जाते है। यदि वह ऐसा व्यक्ति है जो बहुत-सा धन खर्च करके भोज दे सकता है, जो किसी निर्धन व्यक्ति का प्रतिभू बनकर विधि-विहित कठोर श्रम से उसका उद्धार कर सकता है तब इतनी सम्पन्नता होने पर भी यदि उसमे सच्चे और झूठे मित्र के बीच भेद

सच्चे भावक की महत्ता

करने की योग्यता हो तो मेरे लिए आश्चर्य की ही बात होगी। यदि तुमने किसी को कोई भेट दी हो या देने वाले हो तो उस व्यक्ति को—जब उसका मन आह्लाद से ओतप्रोत हो—कभी अपनी कविता सुनने के लिए आमन्त्रित मत करो क्योकि यह निश्चय है कि वह 'वाह-वाह!' 'बहुत अच्छे!' की आवाजे लगायेगा। वह तुम्हारी पक्तियो को सुनकर रग बदलेगा, हर्ष के आँसू बहायेगा, उछले-कूदेगा और धरती पर पैर पटकेगा।

किराए के विलापकर्त्ता वाणी मे और क्रिया मे उनसे कही आगे बढ जाते है जिनका दु ख सच्चा होता है। इसी प्रकार ईमानदार प्रशसक से छद्म प्रशसक कही अधिक भाव-विह्वल हो उठता है। कहते है धनाढ्य लोग जब यह परखना चाहते है कि कोई व्यक्ति मित्रता के योग्य है या नही तो उसके सम्मुख अनेक चषक आग्रहपूर्वक प्रस्तुत किए जाते है और उसकी परीक्षा तीक्ष्ण मदिरा की कसौटी पर की जाती है। अत यदि तुम काव्य-रचना करो तो अपने आलोचक की प्रशसाओ के पीछे से झाँकने वाली धूर्त लोमडी को पहचानने मे कभी भूल मत करना।

प्राचीन काल मे अगर तुम कभी क्विनतीलिअस[१६] के सम्मुख कोई रचना पढते तो वे यही कहते 'कृपा कर इसे ठीक कर लो, उसे ठीक कर लो।' यदि तुम यह उत्तर देते कि तुम इससे अच्छा नही लिख सकते, कि तुम दो-तीन बार व्यर्थ प्रयास कर चुके हो—तो वे तुम से उन अप्रिय पक्तियो को मिटाकर फिर निहाई पर ले जाने का अनुरोध करते। यदि तुम सदोष पक्तियो का सशोधन करने की बजाय उनका औचित्य सिद्ध करने का प्रयत्न करने लगते तो फिर वे आगे एक शब्द भी न बोलते और न कोई निष्फल प्रयत्न करते। भविष्य मे तुम अपने को और अपनी कृतियो को अकेले-अकेले चाटते रहते और तुम्हारा कोई प्रतिद्वन्द्वी न होता।

सहानुभूतिशील और समझदार आलोचक कमजोर पक्तियो की

अवश्य निन्दा करेगा, यदि वे असस्कृत होगी तो उनकी गर्हणा करेगा, निकृष्ट पक्तियो पर वह काला चिह्न अकित कर देगा, झूठे अलकारो का वह निरसन करेगा, तुम्हे अपनी दुरूहता दूर करने पर बाध्य करेगा, सदिग्धार्थ पदोच्चय की आलोचना करेगा और जहाँ परिवर्तन की आवश्यकता होगी वहाँ उसकी ओर इगित कर देगा। एक तरह से वह दूसरा एरिस्तारखस[७] बन जायेगा। वह यह नही कहेगा 'मै छोटे-मोटे दोषो के लिए अपने मित्र की भर्त्सना क्यो करूँ ?' जिस कवि को अनुचित चाटुकारिता मिलती रही है और जिसे बेवकूफ बनाया जाता रहा है, उसके लिए ये छोटे-मोटे दोष ही गम्भीर आपदा का कारण बन जायेगे।

× × × ×

कुकवि

जैसे लोग उस रोगी से दूर रहते है जो खुजली या पाण्डुरोग से पीडित हो, जो पागल हो अथवा विक्षिप्त हो गया हो, उसी प्रकार बुद्धिमान लोग विक्षिप्त कवि से दूर रहते है, उससे बचते हैं, परन्तु लडके उसे छेडते है और मूर्ख उसका पीछा करते है। यदि घूमते-घूमते और अपनी पक्तियो को अलापते हुए (चिडियो की ओर ताकते हुए चिडीमार की तरह हवा मे सिर घुमाते-घुमाते) तुम्हारा यह कवि किसी गड्ढे मे जा गिरे और फिर हाँक लगाये 'सहायता करो, बचाओ, पडोसियो !' तो उसे बाहर निकालने वाला वहाँ कोई न होगा। अगर कोई सहायता देने का कष्ट भी करे और रस्सा नीचे फाँसे तो मै कहूँगा 'कौन कह सकता है कि वह जान-बूझ कर वहाँ नही गिरा और नही चाहता कि उसे कोई बचाये ?' और तब मै सिसिली के कवि के अत की कहानी तुम्हे सुनाऊँगा 'एम्पेदोक्लेस[८] चाहता था कि उसे देवता माना जाये, इसलिए वह जान-बूझ कर ऐतना की धधकती ज्वालाओ मे कूद पडा।' यदि कवि अपना अत ही करना चाहते हो तो उन्हे इस बात की खुली छुट्टी

होनी चाहिए, किसी व्यक्ति को उसकी इच्छा के विरुद्ध बचाना उसकी हत्या करने के ही बराबर है। यह कवि का पहला प्रयत्न नही था। अगर उसे मृत्यु-मुख मे जाने से बचा भी लिया जाये तो वह दूसरे लोगो की तरह नही हो जायेगा, न नाटकीय अंत की अपनी इच्छा का परित्याग करेगा। यह कोई नही जानता कि वह कविता क्यो रचता है—शायद उसने अपने पिता की समाधि को विकृत कर दिया हो या किसी पावन सीमा का अतिक्रमण किया हो और इस प्रकार जाति से बहिष्कृत हुआ हो। पर वह विक्षिप्त है—यह तो स्पष्ट है और जैसे कोई भालू अपने पिजडे की छडे तोड कर निकल आया हो उसी तरह यह क्रूर निपाठकर्ता अधीत और मूर्ख दोनो को दूर भागने के लिए समान रूप से विवश कर देता है। एक बार अपना शिकार पकड पाने पर वह उसे तब तक नही छोडता जब तक कविताएँ सुना-सुना कर उसे मार नही लेता—जैसे जौक जब तक रक्त नही चूस लेती तब तक किसी चीज को नही छोडती।

पद्यानुवाद

[डॉ० रांगेय राघव]

काव्य-कला

[पद्य]

कोई चित्रकार यदि चित्रित कर दे नर-शिर हयग्रीव पर
यत्र-तत्र फिर अगागो पर रग-बिरगे पर अकित कर
ऊपर सुन्दर नारी, नीचे मत्स्याकृति-सी विकृत बना दे
तो पीसो-सुत ! चाहे मीत चितेरा हो तुमको अति प्रियवर
वह जो असभाव्य-सयोजन का करता इस भाँति प्रदर्शन
क्या तुम अपना हास्य रोक सकते हो वैसा चित्र देख कर ?
ऐसा ही अन्विति-विहीन वह ग्रन्थ लगेगा अति विचित्र-सा—
ज्यो होती है रोगी के स्वप्नो मे नही इकाई क्षण भर,
शीश किसी का, चरण अन्य का, जिसमे रूप न एक मिलेगा,
होगा यह परिणाम कि उसमे उलझन भरा विकार दिखेगा ।

"पर कवि और चितेरो को स्वेच्छा का सम अधिकार सदा है"
—बिल्कुल, यही बहाना ले हम, छूट इतर को भी देते हैं,
किंतु कठोर मृदुल कब मिलते, कब भुजग खग सग विहरते,
चीते और मेमने भी क्या कभी मित्रता कर लेते है ?

बहुधा ही गभीर भव्य प्रारभ हृदय को हर लेते है
बहुत बडी आशा बँधती है सहसा ही उपक्रम निहार कर,
आगे किंतु सुनहले स्थल तो कही एक-दो सग घिसटते,
वे ही आकर्षित करते है दृष्टि, रग अपना उभार कर ।

ज्यो—"सुरम्य शस्यो मे चचल धावित क्षिप्र मधुर जलधारा"
या कि "डायना की वेदी औ' कु ज सरस" या "सुरधनु की छवि"
या "राइन की सुन्दरता"—के सुन्दर वर्णन मिल जाते है,
पर सदर्भावस्थिति मे औचित्य नही रख पाते है कवि ।

सभव है अकित कर सकते सरो-वृक्ष तुम, पर जो माँझी
धन दे तुम्हे स्वचित्र खिचाने आया, तुमको उसे दिखाना—
भग्नपोत से ऊर्म्मि-विताडित अति निराश तटगामी बहता,
तो क्या तरु-सफलाकन इस चित्रण मे व्यर्थ न है बतलाना ?

किया एक मधुघट निर्मित करने का जब निश्चय तब क्यो कर
कु भकार के भ्रमित चक्र पर दीर्घ कुम्भ लेता आकृति धर ?
अत इत्यलम्, योग्य जनक औ' तदनुकूल ही योग्य पुत्रगण !
ऐच्छ्य विषय लो किंतु सहज हो, बिखरे नही, गठित हो सु दर !
हममे से अनेक कवियो को नही स्पष्ट है अब तक मन मे
क्या है 'ठीक', इसी कारण वे होते है पथभ्रात भटक कर।

सहित एक चाहता रचना काव्य स्वय तो, और अत मे
हो जाता अस्पष्ट गूढ-सा, अति दुरूहता है आ जाती,
और अन्य माधुर्य्य जगाने के श्रम मे ही डूबा रहता
ओज और सब शक्ति विलमती निर्बलता सब पर छा जाती।

और तीसरा भव्य रूप का सिरजन करने मे तत्पर हो
थोथा शब्दाडबर ही तब पाता है केवल जागृत कर,
चौथा सावधान अति बनता तनिक न झटके खाना चाहे
हो नि शब्द चाहता चलना, अरे रेंग जाता धरती पर।

आत्म-रूप से गठे विषय को भी जो उसकी प्रकृति काट कर,
तुल जाता है—भरे विविधता से वह उसको जैसे चाहे,
तो अस्वाभाविकता आती, जैसे कोई चित्रित कर दे
वन मे चलता मत्स्य कि तैरे लहरो मे वराह अवगाहे।

यदि अभाव है कही कलात्मक सहज-रम्य अनुभव का, तब तो
एक दोष का त्याग अन्य ही घने दोष मे जा डालेगा,
यो है सकल-दृष्टि आवश्यक क्योंकि वही सतुलन जगाती
खड-रूप का अति-महत्त्व सपूर्ण-दृष्टि को जा घालेगा।

एमिलियाई शिक्षण सस्था के समीप का कोई तक्षण
चाहे अपने कौशल मे वह हो सामान्य और साधारण
नखो या कि उडते केशो की अनुकृति खीचेगा अति सुन्दर
और धातु मे कर देगा वह खड-रूप का मनहर चित्रण,
किंतु सफल वह हो न सकेगा क्योकि 'पूर्ण' का भाव न होगा
वह प्रभाव तो आ न सकेगा जिसकी होगी तुम्हे चाहना,
यो मै उस तक्षण-सा होना नही कभी मन मे चाहूँगा
सुन्दरता होती समग्र मे, बहुत कठिन उसका निबाहना।

काले सुन्दर नयन या कि कुन्तल की शोभा तो उठ आये
किन्तु नासिका टेढी दीखे यह तो मुझे नही ही भाता,
ऐसी रचना के सिरजन का गौरव मै तो कभी न चाहूँ
जहाँ असुन्दर का सुन्दर से है बेमेल मेल हो जाता।

अहे लेखको ! अपना जो भी विषय चुनो तुम, पहले देखो
क्या समर्थ हो उसे उठाने के तुम, कितनी शक्ति लिये हो ?
अपने कधो का बल देखो, क्या सँभाल सकते हो उन पर
गहन विचार करो इस पर ही, आतुरता किसलिये किये हो ?

जिसने अपने योग्य विषय को उचित रूप मे यहाँ चुन लिया
सकल प्रयत्न लगाये इसमे सावधान बन, हुआ न आतुर,
उसे न शब्दो का अभाव हो, उसे न कथ्य ढूँढना होगा
अनुधावन यह स्वय करेगे (जैसे मिल गीतो मे लय-सुर)।

यदि मै भूल नही करता हूँ तो इसमे सदेह नही है
क्रम-आयोजन के जादू औ' शक्ति इसी मे होते निश्चय.
जिसे तुरत कहना है उसको तुरत कहा जाये, न देर कर,
शेष कथन मत वहाँ मिलाओ, उन्हे करो पीछे नि सशय।

सावधान हो कवि शब्दो का चयन करे अपनी कविता मे
अनुपयुक्त को त्याग सदा अपनाये वह जो उचित सफलतम,

स्वाभिव्यजना स्तुत्य बनेगी यदि सुनियोजन के अतर्गत
परिचित शब्द ग्रहण कर लेगा चमत्कारमय अर्थ नवलतम।
और कही यह विषय गहन हो औ' दुरूहता माँग कर उठे
नयी रूप-अभिव्यक्ति, कि जिससे सारा अर्थ स्पष्ट हो जाये
तब तो होगा उचित कि बिल्कुल नये शब्द ही ढाले जाये
जिन्हे पुराने खेवे वाले अब तक कभी नही सुन पाये
केथेजी लोगो को अविदित नये शब्द बन गये निरतर,
दुरुपयोग यदि न हो, स्वत अधिकार प्राप्त होगा इसका तो,
•ग्रीक-स्रोत से यदा-कदा यदि नये शब्द यो ढाले जाये
वे स्वीकृति पायेगे, प्रचलन स्वय प्राप्त होगा इसका तो।

क्यो विशेष अधिकार अरे दे रोमन कैसिलियस प्लौतुस को
वह जो वर्जिल और वैरियस का भी अस्वीकार कर दिया ?
यदि वाक्याश एक या दो ही, मै ही ले आऊँ प्रयोग मे
तो मेरी इस स्वतत्रता का क्यो विरोध ने रोध कर लिया ?

क्या न देख मे रहा कि केटो और एनियस यही कर चुके
नये नाम प्रचलित करके क्या की न मातृभाषा है उन्नत ?
अपने युग की नई छाप से रगे शब्द प्रत्येक काल मे
प्रचलित रहे, रहेगे फिर भी, यह अधिकार सदैव समुद्यत।

ज्यो प्रतिवर्ष काल के क्रम मे पल्लव वन को तजते जाते,
इसी भाँति ही शब्द-पुरातन क्रम मे प्रथम लुप्त हो जाते,
एक पुरानी पीढी जाती औ' युवको की भाँति शक्ति भर
नये शब्द का स्थान ग्रहण कर परिवर्द्धित समृद्धि को पाते।
मृत्यु हमारी कृतियो को ही नही, हमे भी ले जाती है,
उसका है अधिकार अपरिमित अत तर्क इसमे न चलेगा,
परिवर्त्तन सबमे होता है, सबका रूप बदल जाता है,
गत पर आगत के शासन को भला अचल बन कौन छलेगा।

अरे क्या हुआ यदि समुद्र घुम भूमि भाग मे रक्षा करता
निज पोतो की उस उत्तर की प्रबल वायु से, राज-कर्म है !
किवा दीर्घकाल से खेया-योग्य विजन दलदल हल से जुत
है कराहता, नगर-हार का पोषण जिसका हुआ धर्म है ?
किवा नदी जो कि शस्यो को करती नष्ट स्वधावन गति मे
श्रेयस्कर पथ पर प्रवाहिता पालित मगलमय बन जाती ?
अरे मनुज के हाथो से जो होता है निर्माण उसे तो
होना होगा नष्ट, काल की ध्वसिनि छाया सब पर छाती ।

फिर क्या शब्दो का वैभव औ' चमत्कार-जादू न मिटेगा ?
वह क्या काट काल के बल को रह सकता अक्षुण्ण जगत मे ?
अप्रयुक्त कितने ही होगे शब्द पुन जीवित गति-क्रम मे,
और आज के आदृत अगणित होगे लुप्त अतीत-विगत मे ।

है 'व्यवहार' अकेला स्वामी, निर्णायक भाषा का, वह ही
मापदण्ड है, उसका क्रम ही स्वय किया करता आयोजन ।
अर्थ बदलते है इस कारण और रूप बदला करते है,
भाषा मे भी जन्म-मरण का चलता है अप्रतिहत क्रीडन ।

सम्राटो, योद्धा वीरो औ' युद्ध-विषादों की गाथाओ—
के उपयुक्त छद का होमर है पहले कर चुका प्रदर्शन ,
असम छद-युग्मो मे पहले आया स्वर विलाप का उठ कर
और सफल प्रेमी का गूँजा तत्पश्चात् पुलकता हर्षण ।

किसने आकर्षक आयोजन किया प्रकाशित सर्वप्रथम यह ?
अभी अनिर्णित, आलोचकगण इसे विवादास्पद है कहते,
स्वय आर्खिलोकस के अपने ओज और आवेश-स्फूर्त ने
दिया जन्म आयम्बक* छद को, कौन न उससे अवगत मिलते ?

---

* Iambic—लघु गुरु द्विमात्रिक (छन्द) ।

उसे भव्य त्रासदी और है लिया कामदी नाटक ने भी,
सवादो के हेतु सफल उपयुक्त छद था अत चल गया।
कोलाहल दर्शक-समूह का स्वय डुबाता है निज रव से
अभिनय के है योग्य इसी से प्राप्त कर गया स्वत बल नया।

कलादेवि ने तन्त्री को है दिया कार्य्य, वह मगलोत्सवो--
के रजन से गु जित करदे, चिता-हर मधु-चषक मधुरतम—
देवो, वीरो, मुष्टि-मल्लगण, विजयी अश्वो और सुघरमन
प्रेमी-गण की मधुर लालसाओ की गाये गाथा अनुपम।

प्रतिभामय कृति मे दिखता है विषय और शैली के स्तर मे
स्पष्ट भेद, तब ही होता है उसका जयजयकार विदित-सा।
यदि अज्ञानावृत मै होऊँ विफल, न रख पाऊँ वह गरिमा
तो क्यो कवि-यश की स्तुति पाऊँ, जबकि पराजित रहा थकित-सा।

मिथ्या लज्जागत क्यो प्रिय हो यह अज्ञान ज्ञान पर मुझको ?
जो 'कामद' का विषय, नही वह तो त्रासदी-छद सह सकता।
जो 'त्रासद' के योग्य छद है दैनदिन-जीवनोपयोगी,
थ्यएसतेस भोज का वर्णन उसको कब निज योग्य समझता ?

फिर भी, कभी-कभी अपना स्वर है 'कामद' भी उन्नत करता,
ज्यो ख्रेमेस क्रुद्ध हो करता अपना भीषण गर्जन-तर्जन,
तेलेफुस या पेलेउस भी कभी-कभी दु.खात बीच भी
अरे गद्य मे ही प्रलाप करता है, सुख से पाकर वर्जन।

निर्वासन द्रारिद्र्य रुलाता है जब उसको तब वह अपने
शब्दाडम्बर, दीर्घ वाक्य औ' जटिल शब्द है त्यागा करता,
अपने दर्शकगण को अपनी व्यथा सुनाने की इच्छा से
उनके मन को छू लेने को इतना है परिवर्तन वरता।

कविता का सुन्दर होना ही उसके लिए नही है काफी,
अरे सुनाते ही प्रभाव भी डाले, श्रोता का मन हरले
निज स्वेच्छा से त्वर अधिकार करे उस पर यह आवश्यक है,
वही श्रेष्ठ कविता कहलाती जो कि ध्यान आकर्षित करले।

जैसे मानव-आनन देता स्मिति का उत्तर स्मिति से जग मे,
आँसू भी तो उत्तर-प्रत्युत्तर बन कर आँसू है पाते।
मुझे रुलाना अगर चाहते तो तुम पहले दुख का अनुभव
स्वय करो, हाँ स्वानुभूति के ही प्रभाव वेदना जगाते।

अरे अन्यथा दुख तुम्हारा हे तेलेफुस या पेलेउस!
मेरे मन को छू न सकेगा, क्योकि न सवेदन मे डूबा।
यदि न पात्र मे बोलेगा जग भाग तुम्हारा रम कर भीतर,
श्रोता या तो हँस-हँस देगा, या वह सोयेगा अति ऊबा।

दुखी शब्द शोभित होतें है केवल मलिन विषण्ण वदन पर,
शब्द भयानक होते है अनुकूल क्रुद्ध आनन पर निश्चय,
क्रीडारत है शब्द चाहते मुख पर एक मधुरता की छवि,
शब्द कठोर चाहते केवल मुख मुद्रा गभीर असशय।

प्रकृति हमारे मनस्-विचारो को पहले देती है ऐसे
बाह्याकृतियो मे ही उनकी गठन, कभी है हर्षित करती,
अथवा कभी क्रोध से भरती या कि हृदय को दुख से भरकर
उसे निराश्रित कर देती है और यातनाओ से भरती।

तदुपरान्त वाणी-सहाय से अपने भाव प्रकट करती है,
प्रकृति कार्य्य है क्रम, उसका तो यो ही अपना कार्य्य चलेगा।
स्वावस्था से यदि वक्ता के शब्द न खाते मेल उचित, तो
सकल रोम ही अट्टहास कर उसका अति उपहास करेगा।

कौन, कौन है वक्ता इसका बहुत भेद पडता है पल-पल,
देव है, कि उपदेव बोलता, या कि बोलता वयोवृद्ध है—
किवा है नवयुवक, धनी महिला है या आतुरा धाय है,
किवा व्यापारी, असीरियाई या कोई कृषक-पुत्र है।
या कि कोल्चियाई है अथवा है थेबेस-निवासी कोई
पला वहाँ अरगौस प्रात मे, यह जो भेद अनेको पडते,
इनका अति प्रभाव पडता है, स्वाभाविकता जो कि चाहता,
इसमे जो अभाव रहते है सीधे ही जाकर है गडते।

या तो परिपाटी परपरा को ही पकडे चलो निरतर,
या फिर जो नवीनता लाओ उसमे हो औचित्य-नियोजन।
लिखो एक नाटक औ' उसमे यदि तुम भुवन विदित ओजस्वी
अखिल्लेस को चित्रित कर दो निर्दय क्रोधी औ' अधीरमन—
उसे क्रूर-विकराल दिखा दो, तो वह इसे नही झेलेगा,
यह गुण उसके न थे कि इनका करता वह इस भाँति प्रदर्शन।
उसे एक भाषा आती थी, भाषा एक खड्ग था उसका
वह उसके उपयुक्त बनेगा यदि उसका हो वैसा चित्रण।

ऊर्जितमन मेदेआ ठीक है, ओरेस्तेस प्रवासी सूना,
यायावर ही इओ, अश्रुमय इनो जिस तरह ठीक रहेगे,
इक्सिओन विश्वासघातरत, तब तो उचित रहेगा दर्शन
किंतु अन्यथा रूप स्वय ही उपहासास्पद तुच्छ लगेगे।

अब तक का अस्पृष्ट विषय यदि कोई लाओ रगमच पर
औ' तुममे इतना साहस है नये पात्र का सिरजन कर दो,
तो वह पात्र आदि से अपने अत तलक हो एक तरह का,
बदले नही चरित्र अचानक, उसमे सम का नियमन भर दो।

घिसे-पिटे से किसी विषय मे मौलिकता लाना दुष्कर है,
किंतु साथ ही इलिअद का नाटकीकरण ही श्रेयस्कर है

उसमे अधिक बुद्धिमानी है ऐसा नया विषय लाने से
जो अनजाना है सबको ही, गा न चुका जो कोई स्वर है।

चिर-परिचित सामग्री मे से रचूँ एक कविता मै ऐसी
अति कौशल से, जिसे देख सब चाहे त्वर कर उठे अनुकरण,
किंतु व्यर्थ हो सकल परिश्रम, निष्फल बहे स्वेद पर फिर भी
वैसी कृति वह सके नही रच इतना बल रखता क्रम-नियमन।

वस्तु-नियोजन मे बल इतना है कि निपट साधारण विषयो—
मे भी जादू भर देता वह, आकर्षित कर लेता है मन।
यदि निकृष्ट सस्तापन तज दो, यदि अपने प्रस्तुतीकरण मे
तुम न शब्दश करो अनुगमन तज स्वदृष्टि का सब अपनापन,
यदि प्रतिलिपिकर्त्ता न बनो तुम, स्वय बाँध ले विषय तुम्हे ही,
लुप्त आत्म-विश्वास तुम्हे यदि किसी खड्ड मे घेर न डाले
तब वह खान जो कि है सबकी, अपने अधिकारो से तुम ही
बन जाओगे उसके स्वामी, यो मौलिकता को प्रतिपाले।

अरे विगत के चक्रिक* कवियो-सी न बने भूमिका तुम्हारी—
जो करते आरम्भ 'गा रहा हूँ लो मै अब विश्रुत कथा जो—
प्रिअम-भाग्य की, ट्रॉय-युद्ध की !' बोलो, ऐसे मे क्या होगा ?
सृजन करेगा इन कथनो के योग्य भला क्या कवि, यह आँको !

क्या होगा, पहाड भी खोदा, निकला चूहा—बस यह होगा !
इससे कही श्रेष्ठ है यह ही जिसमे मिलता यत्न-नियत्रण
'वाणी ! गा ! तू मुझे सुना दे उस प्रवीर की कथा कि जिसने
ट्रॉय-पतन-उपरात मनुष्यो के देखे पुर-रीति अबन्धन'।

उसका लक्ष्य—ज्योति धुएँ से पाना है, न कि धूम ज्योति से,
दर्शनीय कौतूहलमय आश्चर्य्य दिखाये आगे लाकर,

---

* Cyclic Poets

यथा अन्तिफातेस, कि स्क्युल्ला, रे क्युक्लोप्स या कि खार्‌युबदिस
ऐसे पात्र दिखाता है वह अद्‌भुत वातावरण जगा कर।

वह न वृथा सम्बन्ध जोडता मेलअजर के मरण-योग का—
दियोमेद के आवर्तन से, अड-युगल का त्रॉय-समर से,
वह तो चरमोत्कर्ष विदु की ओर तीव्र गति चलता अविरत
कथा–प्रवाह बीच ले चलता जैसे हो श्रोता परिचित-से।

जिसे स्पर्श उसका न उजागर कर सकता, उसको तज देता,
गल्प जोडता, और सत्-असत् मिश्रित करता वह गति-रत यो
आदि, मध्य औ' अत सभी से स्वर उठता है एक सदृश ही,
चयन गठन देता है उसको शिथिल बने वह अप्रतिहत क्यो।

सुनो! कि मै औ' सारा जग ही करते मन मे क्या आकाक्षा
यदि तुम दर्शक मुग्ध चाहते पटाक्षेप तक रहे शात जो
और अत मे 'साधु' 'साधु' कह करे प्रशसा मुखर तुम्हारी
तो प्रति युग की विशेषताये स्पष्ट याद रक्खो, न भ्रात हो।

और प्रकृति जो आयुरूप मे परिवर्त्तन लाती है उसको
समझो वह गहराई देगा अविरत उसका करो अध्ययन,
मानव नही एक-से रहते उनको आयु प्रभावित करती,
आओ करे तनिक इसका भी हम अपनी गति मे विश्लेषण।

वह बालक जो सीख गया है चलना, करता कुछ-कुछ बाते
समवयस्क का सग चाहता, तुरत क्रुद्ध त्वर हर्षित होता,
उसका मन तो घडी-घडी है बदला करता, देर न लगती
वह स्थैर्य को नही जानता, बात-बात मे चचल होता।

श्मश्रुहीन कोई किशोर ज़ब निज गुरु से अवकाश प्राप्त हो
तुरग श्वान औ' दूर्वाशोभित स्निग्धातपमय मैदानो मे

रजन के आधार ढूँढता, निज धन का अति व्यय करता है,
दिखलाता धृष्टता सुसम्मति जब पडती उसके कानो मे।
और कुटिल पापो के सम्मुख वह होता है मोम-सदृश ही
चाहे जैसा मुड बन सकता, उसमे अपना धैर्य्य न होता,
अपना श्रेय अपरिचित उसको, किन्तु हृदय उत्साही रहता
तृष्णाएँ ललचाती उसको, ध्येय बदलता, रुचि को खोता।

पर यौवन आने पर उसकी रुचियो मे आता परिवर्त्तन,
धन औ' मैत्री हो जाते है उसके लक्ष्य सतत जीवन मे।
उसे न करता वह जो पीछे उसको पछतावा दे सकता,
और महत्त्वाकाक्षा का वह होता दास किन्तु निज मन मे।

है अनेक ही कष्ट जरा मे, क्योकि वृद्ध धन-अर्जन करता,
एकत्रित करता, पर अपना लाभ न करता, व्यय से डरता
उसका वह आनन्द न लेता, क्योकि नही रहती है ऊष्मा
अथकित-सा स्वभाव बन जाता जो है काम किया वह करता।

दृढता खोती, आशा उलझाती है उसको, और शिथिल हो
दीर्घायुष–कामना सताती, कलहमग्न वह असतुष्ट-सा,
बस अतीत मे ही रहता है गुण गाता उसके ही निशि दिन--
'जब मै लडका था' यह कहता लगता सबके लिये रुष्ट-सा।
सदा नयी पीढी की करता टीका-टिप्पणियाँ, विरोध ही--
यो उसका जीवन चलता है स्नेह-विहूना नवयुग के प्रति।
आने वाले वर्ष निरतर निज गति मे लाते है अगणित
सुख-वरदान, और ले जाते साथ अनेको अहा विषम गति!

नही वृद्ध का अभिनय करना पडे युवक को, या कि युवक का
बालक को, यदि हम इसके प्रति सावधान हो रहे, न सशय—
जीवन के प्रत्येक काल के लिए उचित जो गुण होते है
उनका हम निर्वाह करेगे, यही बुद्धिमत्ता है निश्चय।

कोई कार्य्य मच पर होता, या कि उसे बतलाया जाता
घटित कही अन्यत्र, इस तरह दो प्रकार के प्रचलन होते ।
श्रव्य न उतना मनस-प्रभावित करता जितना दृश्य करेगा
नयनो देखे की गरिमा का भार नही श्रुति के पथ ढोते ।

दृश्य कि जो नेपथ्योचित है उसे मच-घटना न बनाओ,
अरे पात्र से उसका परिचय वार्त्तालापो मे ले आओ,
धीरे-धीरे विघटन उसका करो नयन से पर रख कर ही,
ज्यो–प्रोकने को दर्शकगण के समुख तुम न विहग बनाओ ।

बने न काद्मस सर्प, अत्रउस भी नरमास वहाँ न पकाये
और मेदेआ निज पुत्रो को काटे नही मच पर आकर,
ऐसी बाते घृणा-जुगुप्सा जागृत करती है दर्शक मे
उसका है विश्वास न जगता देख दृश्य प्रत्यक्ष वहाँ पर ।

वह नाटक जिसकी हो सकती माँग और जिसकी फिर-फिर ही
हो सकती चाहना, सदा हो पाँच अक का, न कम न ज्यादा ।
जब तक हो अत्यन्त नही आवश्यक, जिसके बिना न कोई
काम चल सके तब तक अपना पात्र देवता नही बनाना ।

चौथा* पात्र नही हो कोई जो बढ कर बोले यह देखो,
कोरस का कर्त्तव्य समझ लो उसकी है अपनी मर्यादा,
ओजस्वी अभिनेता का वह कार्य्य पूर्ण करने मे रत हो,
अको के अवकाशो मे कुछ ऐसा उससे मत कहलाना—
जो घटना-क्रम नही बढाये और कथानक मे स्वाभाविक
बन न समाये, कोरस को तो सत् का पक्ष ग्रहण करना है,
सत् सम्मति देनी है उसको, नियम-न्याय को है सराहना
जो आवेशो मे बहते है उन्हे नियत्रण मे रखना है,

---

* चौथा पात्र-कोरस ।

जो पापो से डरते उनका हित करना है, और शाति के
द्वारो का अवरोध हटा कर उन्हे खुला रखना नि सशय,
असतुलित भोजन विरोध कर, परित्याग करके दभी का,
दुखियो पर समृद्धि बरसाये देव ! माँगना यह वर निश्चय ।

विगत काल की नरकुल-वशी न थी आज की-सी निश्चय ही
कास्य-निर्मिता औ' प्रतिद्व द्विनि बनी तूर्य्य की, वह तो केवल
मृदुलस्वरा थी अल्प-रध्रिका, कोरस की सहायिका ही थी
सम गत के उतार का उसको परिचय देती, स्वरभर कोमल
सीमित दर्शकगण समूह का रजन करने मे समर्थ थी,
तब गिनती के योग्य वहाँ एकत्रित होता था समाज भी,
जिसके जन सीमित व्ययकारी, थे पवित्र ईमानदार ही,
तब नरकुलवशी जो करती वह कर सकती नही आज भी ।

जब विजयिनि जातियाँ बढाने लगी प्रवृद्ध देश-सीमाएँ
नगरो की प्राचीरे बढने लगी भुजाये फैला अपनी,
अलस भोर की बेला मे भी ढलने लगे चषक मदिरा के
भोजोत्सव आनदोत्लासित बने एक मस्ती अनकहनी,
लयतानो ने भी तब पाये नव-अधिकार, मुक्त वे फैली,
भला अशिक्षित वे गँवार थे, उनकी रुचि से क्या हो आशा ?
उनका ध्येय विलास लास था, थे ग्रामीण, विदूषक औ' वे
स्वय नागरिक, उनके समुख सद्रुचि तो थी एक दुराशा !

जब वशीवादक ने अपनी परिपाटी से आगे बढ कर
अभिनय और असयत मुद्रा को भी अपना कार्य्य बनाया
लगा मच पर वस्त्रो को वह फहराता चलने मस्ती से,
यो उस सौम्य यत्र को घेरे नई तान, नवस्वर भी आया ।

मुखर-रूप सभाषण उसके सग चला जिसने तब ला दी
ऐसी भाषा जिसका पहले न था किसी को ज्ञान तनिक भी ।

जो' भविष्यवाणी-प्रभावमय बुद्धिपूर्ण सूक्तियाँ अनेको,
जो देल्फी के आप्तवचन से कम न ठहर सकती है कुछ भी ।

कवि जो तुच्छ अजा पाने को करुण-गीत गा प्रतिस्पर्धा मे—
रत होते थे, अब वे ग्राम्य व्यग्य भर लाये निज गीतो मे
निरावरण-सा औ' अश्लील, क्षुद्र परिहासो को गाने मे
लगे, बिना सम्मान गँवाये, अपने नये-नये मीतो मे ।

था उनको निश्चय कि चला जो दर्शक आता बलिपूजा से
मदिरापीत, न नियमन जिस पर लागू होता है इस वेला
उसे चाहिये नूतन जादू, नूतनता की कोई छलना,
यो विलास-वासना आ गई उसका ही प्रवाह आ खेला ।

अपने दर्शकगण को वन्यदेव के हास्य-व्यग्य देना तो
ठीक हो गया भले, गहन गाभीर्य्य छोड, ले चचल रजन,
किन्तु मच पर आये जो नायक या देव न वे भी डूबे
अति निकृष्ट-स्तर की बातो मे इसका करना होगा अकन,
क्योकि भव्य स्वर्णिम सुबैजनी वस्त्र उन्होने जो पहने है
उनके योग्य न हाट-गैल की बात कभी अनुरूप बनेगी,
और साथ ही क्षुद्र समझ कर वे धरती से बचने के हित
मेघो और शून्य के पीछे पडे न, यह भी भूल बनेगी ।

है त्रासद नाटक के गौरव की क्षति यदि वह नीचे उतरे
और छद गभीर त्याग कर हल्केपन को ही अपना ले ।
ज्यो पवित्र दिवसो पर कोई धीर प्रौढ महिला उठ नाचे,
ऐसा ही उपहासास्पद हो यत्न कि जो ये द्वन्द्व घना ले ।
कलादेवि को विवश वन्यदेवो मे जो विचरण करना हो
तो वह अपने उनके बीच रखेगी अन्तर उचित धीरमति,
शब्दाडम्बर औ' हल्केपन मे मध्यम मग ही श्रेयस्कर
उपहासास्पद बन जायेगी दोनो पक्षो की यदि हो अति ।

यदि मै व्यग्यभाव-सयुत ही रचूँ एक नाटक तो निश्चय
मै केवल दैनदिन निचले स्तर के ही न शब्द चुन लूँगा,
न मै कभी त्रासिक शैली से इतनी दूर चला जाऊँगा,
दोनो के माध्यमिक मार्ग को ही मै अपना पथ वरूँगा।

ऐसा भी हो नही कि दर्शक यही न समझे कौन बोलता
दावुस, या साहसिनि प्यूथियस जिसने निज स्वामी को छलकर,
विजय - चिह्न मुद्रा पा ली थी, या कि सिनेलुस,
देवमित्र जो, पथदर्शक, दर्शन का ज्ञाता, सरल मनुजवर।

रगमच पर लाये जाये वन्यदेव-गरण जब, मम मति मे—
कुशल नागरिकगरणो सदृश वे प्रेम-गीत मे न हो शिथिलतन,
और न ही अपमानजनक उपहासो वा अश्लील कथन की
झडी लगा दे। इन दोनो का होना होगा उचित सयमन।

उच्च-निम्न रोमक दोनो ही इसे चाहते नही हृदय से,
धन-समृद्धिशाली सम्मानित इससे मान-क्षुब्ध है पाते,
नही इसे साधारण जन भी अपने मन से अपनाते है
वे भी इसको स्तुत्य न कहते, इससे शीघ्र ऊब है जाते।

एक दीर्घ अनुगमन करे लघु का वह 'आयम्बस' कहलाता—
चरण सजीव सशक्त एक वह, आयम्बिक पक्तियाँ इसी से
त्रिपदी* का अभिधान पा गई, क्योकि आदि से अन्त तलक रे
उनमे छह यति-स्थान दीखते। छद विनिर्मिति हुई यही रे।

अनतिदूर की बात कि अपनी गति को शिथिल मद करने को
आयम्बस ने मद 'स्पौन्डी' को भी निज मे लीन कर लिया
मैत्री-भाव हुआ यो स्थापित—वह दूसरे, चतुर्थ चरण मे
अपना स्थान बना ले, ऐसे उसको भी स्वीकार कर लिया।

---

* ट्राइमीटर।

हाँ यशमडित अति 'त्रिपदी' वे जो अक्कियस ख्यात कवि की है
उनमे मिलता है मुश्किल से वह 'आयम्बिक' चरण और वह
स्वय एन्नियस कवि की भारिल वे पक्तियाँ कर रहा लाछित
जिन्हे कि उसने किया मच पर प्रस्तुत, किंतु रह गयी दुस्सह
अति आतुरता, असावधानी शिल्प भाग मे। या फिर कवि को
काव्य-कला का ज्ञान नही था जो वह ऐसी भूल कर गया।

आलोचक प्रत्येक नही रखता है क्षमता जो वह पकडे
गति-यति-भग। और स्वेच्छाचारण भी सचमुच अधिक बढ गया
है रोमक कवियो मे इसमे तो कोई सन्देह नही है।
किंतु इसी से नियम-भग मै करूँ और अतिचार कर उठूँ ?

या यह समझूँ जनता मेरी भूलो को लक्षित कर लेगी ?
क्षमा, क्षमा की आशा मे ही भले सुरक्षा प्राप्त कर उठूँ,
मै लाछन-अभियोग भले ही बचा गया इस भाँति चतुर बन,
किंतु प्रशसा पाने के तो योग्य न कोई कार्य कर सका ?

मेरे मित्रो ! क्या महान् साहित्य ग्रीक का पढते हो तुम ?
अहर्निशा अध्ययन न करते ? क्या मन इसमे नही रम सका ?
कोई कहता 'किंतु तुम्हारे पूर्वज है कर गये प्रशसा
प्लौतुस के मनरजनकारी कृतिछन्दो की तुमसे पहले।'
सच है, वे तब अति सहिष्णु थे, उन्हे मूर्ख तो नही कहूँगा,
तभी स्तुत्य कह गये उसे वे, पर हर कोई कैसे सहले ?

काश कि मै तुम यही जानते कैसे त्वर यति-भग पकडते
या प्रति पक्ति अत मे उसका वह उतार भी ठीक देखते ?
है अश्लील किसे कहते, क्या भेद वाक्कौशल से उसमे,
तब तो स्पष्ट दोष भी सारे दृग-समुख से स्वय हेरते।

कहते है त्रासद नाटक का थेस्पिस ने था किया प्रवर्त्तन
तब तक कविता का यह माध्यम, स्पष्ट, किसी को ज्ञात नही था

दो पहियो की साधारण-सी गाडी मे मडली लिये वह
डोल-घूम नाटक दिखलाता, अवसर मिलता जहाँ कही था ।

मदिरा-रजित-आनन वाले अभिनेता थे खेल दिखाते,
तदुपरान्त ही ऐस्ख्युलस मुखछद्म रम्य वेशो को लाया,
छोटे तख्तो पर उसने ही रगमच अपना स्थापित कर
अपनी नाट्यमण्डली को तब नया ढग अपना सिखलाया,
अभिनेता फिर लगे बोलने रौब-दाब से उठा-उठा स्वर,
पहन उपानह 'बस्किन' चलने लगे मच पर गौरव से भर ।
और पूर्ववर्त्ती कामदियाँ भी आयी तब सर्व-प्रशसित,
पर स्वतत्रता ही ले डूबी—कलह-असयम घिरा मच पर ।

राज्य-नियम ने रोका उसको, किया समर्पण रगमच ने
'कोरस' के अधिकार छिन गये जो हिसा के रहे प्रदर्शन
हुए मौन वे होकर लज्जित । नये रूप फिर उठ कर आये ।
अपने ही कवियो ने शैली तजी नही कोई भी, निश्चय,
यह क्या कम है स्तुत्य ? उन्होने स्वय ग्रीस-पग-चिह्न त्याग कर
हो त्रासदी, कामदी सब मे प्रस्तुत की ले गौरव-अकन
अपने राष्ट्र-जाति की उज्ज्वल गाथाएँ । मै सत्य कह रहा—
अरे लैटियम सैन्य-शक्ति निज लिये हुए जैसे नि सशय ।

जैसे शौर्य्य-पराक्रम मे वह अतुलनीय है, उससे ज्यादा
होता काव्य-क्षेत्र मे भी वह, उसके सारे कवि यदि केवल
सैन्य-पदातिक सदृश पुराना निज साहित्य नही तज देते
उसके दीर्घ परिश्रम को भी अपनाते वे समझे सबल ।

न्यूमा के वशज ! पीसो कुल-पुत्रो ! क्या ऐसी कविता को
तुम न करोगे लाछित, जिसको किया नही फिर-फिर परिमार्जित
समय और तन्मयता ने है ? किंतु जिसे माँजा है फिर-फिर
उसे न तुम क्या स्तुत्य कहोगे यदि वह दोष-रहित है बिल्कुल ?

दिमोक्रितुस कह गया कि प्रतिभा श्रेयस्कर औ' कला अधम है,
प्रकृत-सुस्थ कवियो के हित तो हेलिकोन के द्वार विमुद्रित—
बद कर गया, अब बहुतेरे श्मश्रु और नख बढा रहे है
स्नानहीन एकातवास कर, प्रतिभा मे रहते है मिलजुल !
अब कवि वह बन रहा यशस्वी जिसने शीश लिसीनस-नापित—
के समुख न झुकाया अपना, अपने कुतल को कटवाने,
अरे शीश वह ! तीन-तीन अन्तिक्युरेस भी असफल होगे
किन्तु न होगा ठीक, क्योकि प्रतिभा कोई कैसे पहचाने !

मै भी कैसा मूढ ! पित्त-आरोग्य-निरत जब मधु आता है—
किन्तु इसी कारण तो कोई कवि न श्रेष्ठतर लिख भी पाता ।
इसका इतना मूल्य ! अरे मै सिल्ली हूँ जो यद्यपि बढ कर
स्वय न सकती काट, लौह पर इस पर तीक्ष्ण धार पा जाता ।

यद्यपि मै लिखता न, किन्तु मै लेखन का कर्त्तव्य कार्य्य सब
लेखक को समझाऊँगा, औ' उसको यह भी बतलाऊँगा
कहाँ प्राप्त होगी सामग्री उसको अपनी, वह सब क्या है
जो कवि का निर्माण और शिक्षण करता है, दिखलाऊँगा—
क्या है उसके योग्य, न क्या है, कहाँ ज्ञान है, कहाँ भूल-क्षय,
सारे लेखन का रहस्य है स्थिर विवेक कृत सुन्दर निर्णय ।

सुकरातादिक की कृतियाँ ही तुम्हे तथ्य देगी, समर्थ है,
तुम सापेक्ष दृष्टि वस्त्योचित रख कर इन्हे प्राप्त कर डालो,
शब्द सहज अनुगामी होगे, इसमे सशय शेष नही है,
आवश्यक है निज पात्रो के समुचित रूप सकल प्रतिपालो ।

पितृभूमि, औ' मित्र, कि भ्राता, स्नेही अतिथि, जनक जननी के
प्रति जो निज कर्त्तव्य समझ लेता है अति सुस्पष्ट हृदय मे,
या ससद-सदस्य या न्यायाधीशादिक के कार्य्य जानता,
समर भूमि प्रेषित सेनानी का कर्त्तव्य जानता मन मे,

वह अपने प्रत्येक पात्र को क्या करना है क्या देना है
सहज समझ लेगा, न भूल होगी उससे कर्त्तव्य-निचय मे,
मै कहता हूँ, अनुकृतिकारी कुशल! सदा जीवन, सुनीति को
देखो जीवन के यथार्थ मे, लगो तभी इनके अकन मे।

जीवन के यथार्थ की भाषा अपनाओ वह श्रेष्ठ रहेगी।
साधारण-सी लिये समाहिति, औ' चरित्र-चित्रण ले सुन्दर
कभी-कभी कोई नाटक है, ओजाकर्षण कला-शिल्प से
हीन, हीन होकर भी होता सुघर-सफल जनता मे जाकर।

सगीतात्मक तुच्छ नगण्या अनर्गला पक्तियाँ हारती,
पर इस नाटक की जमती है साधारण मे मनोरजना।
ग्रीक, ग्रीक थे जो करते थे यश कामना केवल अहरह,
कलादेवि ने उक्ति-कुशलता औ' दी उनको पूर्ण व्यजना!

अपने रोमी तरुण बडी गणना कर केवल यही सीखते
एक शिलिग का सौवाँ हिस्सा करने मे क्या होगा करना?
'कहो ऐल्बिनस, तरुण! बताओ! छह पेन्सो से एक घटा दो
कहो बचा क्या, तुम्हे जानना आवश्यक है, देर न करना'।
'पाँच बचे' 'शाबाश! करोगे उन्नति तुम भी, अच्छा बोलो,
एक और जोडो, फिर क्या हो?' 'सात'। यही जो क्रम चलता है,
अरे लोभ का यह सहारक रूप, कि जो धन-अनुवर्ती है
जहाँ रँग चुका है आत्मा को, वहाँ भला फिर क्या बचता है?

ऐसे मे वह काव्य रचा जायेगा जो हो श्रेष्ठ मनोहर
सग्रहणीय स्तुत्य बन कर जो पाये युग-युग अविकल आदर
इसकी आशा कौन करेगा? कवि का है यह लक्ष्य कि या तो
अर्जन करे या कि फिर केवल वह आनन्द उठे जागृत कर।

या फिर उपादेय को लेकर अनुरजन से मिश्रित कर दे।
जो भी चाहो प्रेषित करना, करो उसे सक्षिप्त ललित ही,

जिनसे श्रोता तुरत समझ ले, स्मृति मे उसे तथैव सँभाले,
श्रापूरित स्मृति, व्यर्थ शब्द प्रत्येक त्याग देती तुरत ही।

मनरजन-हित रचित गल्प सान्निध्य सहेजे वस्तु-सत्य से,
अति की विश्वासापेक्षा भी करे न नाटक सीमा तज कर,
कही लामिया-चर्वित शिशु को नही दिखाश्रो पुन निकलता
जीवित, उसके बडे उदर से, मानेगा कोई न सहज कर।

उपयोगी शिक्षा न प्राप्त हो जिससे, वृद्ध न उसे चाहते,
श्रौर तरुण अभिजातो को गम्भीर छन्द के बन्ध अखरते,
उपादेय को जो कि मधुर से मिश्रित करते वे कौशल से
शिक्षित करते, मोहित करते पाठक को, युग मे जय वरते।

वह पुस्तक है जो कि प्रकाशन को धन देती, श्रौर विदेशो
मे प्रचलन पाती है, देती कवि को यश भी दीर्घकाल तक।
कुछ होते है दोष जिन्हे हम सहज अदेखा कर सकते है।
मै उनका भी रूप बताऊँ क्यो वे नही दीखते बाधक——
मन श्रौ' हाथ चाहते है जो नही तार से सदा वही ध्वनि
निकला करती, अरे विलबित नही, कभी द्रुत झकृत होता,
सदा न शर भी लक्ष्य बेध करता है इतना करो स्मरण तुम,
सुन्दरता की बहुतायत मे लघु दोषो से दोष न होता।

वे असावधानी से बचते या वे मानव के स्वभाव की
निर्बलता मे हो जाते है, जब कि न ध्यान बना है रहता——
उन्हे बचा जाने का, पर जो सुन्दरताएँ अति समृद्ध हो
वहाँ दोष ऐसे नगण्य है, मन उन पर है नही अटकता।

तो हम पहुँचे कहाँ ? देख ले। प्रतिलिपिकारक जो फिर-फिर ही
करता वही भूल है, यद्यपि सावधान कर देने पर भी

खोता अपना स्थान, और जो तन्त्रीवादक बार-बार है
उसी तार पर स्वर खो देता, उस पर भी हँसते है सब ही ।
ऐसा ही था शिथिल खोएरिलस, जिसकी पक्ति एक-दो सुन्दर
यदि मिल जाती है तो उनको देख एक विस्मय होता है,
पर होमर मे दोष एक भी देख रोष होता क्यो मन मे ?
दीर्घ परिश्रम मे क्या झपकी को न स्थान पल भर होता है ?

कविता चित्रकलावत् ही है, एक चित्र भाता समीप से
चित्र अन्य की है विशेषता उसे देखना कुछ दूरी से ।
एक धुन्ध का प्रार्थी होता, अन्य बुलाता तीक्ष्ण विवेचन
करता है कामना कि उसको देखा जाये ज्योति घनी से ।

एक मनोरजन करता है एक बार ही, किंतु दूसरा—
बार-बार के देखे से भी कब उसका घटता आकर्षण ?
हे पीसो कुल की आशा तुम ! स्वय तुम्हारे सुधी पिता है
पथ तुम्हारा दिखलाने को, और स्वय तुम बुद्धि-विचक्षण,
लो यह, ग्रहण पाठ-सा करलो, अपने सग इसे ले जाओ,
सीमित क्षेत्रो मे ही होती सह्य-क्षम्य प्रतिभा की लघुता—
रे निकृष्टता ! भले मेस्साला का-सा भाषण नही दे सके
पर वकील दूसरी श्रेणि का तो समाज मे चलता-फिरता—
कैसेलियस सदृश हो उसमे ज्ञान नही, फिर भी चल जाता,
उसका भी अपना महत्त्व है, मूल्य, क्योकि वह आवश्यक है,
पर निकृष्टता कविता मे हो, देव, मनुज, पुस्तक-विक्रेता,
सबको ही असह्य है यह तो, यही सदा की एक बात है ।
जैसे मधुर भोज-वेला मे, कुरुचिपूर्ण सगीत बेसुरा
अप्रिय गध, मधु-मिले पोस्त—ये सभी वितृष्णा पैदा करते,
क्योकि नही भोजन से इनका कुछ सीधा सम्बन्ध, सभी के
बिना भोज पूरा हो जाता, अत व्यर्थ है यह सब लगते ।

ऐसे ही कविता जिसका है काम एक आनन्द जगाना
यदि वह अपने इसी कार्य्य मे हुई पराजित और विफल तो--
अरे उच्चतम बन जाती है स्वत अधमतम देर न होती,
देखो अभ्यासो से ही है प्राप्त सकल होते कौशल तो,

समर भूमि या क्रीडागण मे अनभ्यस्त है नही उतरते
एकत्रित समूह के हो वे बस उपहास पात्र यदि आये,
उन्हे रोकता कौन ? किन्तु वे शिक्षण बिना न आगे आते,
पर कवि ही है, भले ज्ञान हो या हो नही, न पीछे जाये।

कवि है नही, किन्तु रचते है छदो को, कैसा गुमान है !
और न क्यो ? क्या पराधीन है ? कुल मे हीन ? न क्या भू-स्वामी ?
है मुझको विश्वास कि तुम अनुचित न कहो, अनुचित न करोगे।
कितु याद रखो कि किसी दिन तुमने भी यदि लिख दी कविता—

आलोचक माएसिऊस को जाकर पहले दिखला लेना,
अपने पिता और फिर मुझको दिखलाओ, बन रहो अकामी,
और पाण्डुलिपि तब ले जाकर एक दशी तक यो ही रख दो
तब निकाल कर देखो फिर से उस दिन जो कि रची थी कविता।

जो न प्रकाशित हुआ उसे तुम स्वय नष्ट भी कर सकते हो,
कितु प्रकाशित हो जाने पर नही शब्द निरसित हो पाता।
अरे ओर्फेउस, ऋषि औ' कवि था, जिसने वन्य जातियो को जा
हत्या और कुटिलताओ से बाहर करके सभ्य बनाया,
इसीलिये यह दतकथा है उसने सिह-व्याघ्र पाले थे,
ऐसी ही थेबेस नगर के आदि प्रतिष्ठाता की गाथा
वह अम्फिओन हिला देता था पाषाणो को तत्रि-नाद से
इन्द्रजाल उसकी याचा का—उसने जो चाहा करवाया।

थी अतीत मे कवि की यह ही ख्यात बुद्धिमत्ता जगती मे—
व्यक्ति-राष्ट्र सबधो की वे व्याख्या करते थे गभीरतम,

पूज्य और साधारण का भी ज्ञान कराते थे सबको ही
नगरो को निर्मित करते थे, रुद्ध वासना कर अधीरतम ।
दपति के अधिकार बताते, काष्ठाकित थे नियम कराते—
यो अनेक गभीर कार्य्य कर वे अतीत-कवि हुए यशस्वी ।
मिला उन्हे सम्मान-मान भी, उनका काव्य हुआ अतिआदृत
थे अति योग्य समर्थ स्वय वे उचित प्रतिष्ठाधर तेजस्वी ।

उनके परवर्ती होमर ने वीरो के चरित्र को गाया
उनके शौर्य्य क्रोध का चित्रण किया प्रभावोत्पादक सुन्दर
सुघर कलात्मक नये रूप से, त्युरतएउस ने निज गीतो से
मानव-मन मे शौर्य्य-पराक्रम जागृत किया ओजमय दृढतर ।

चमत्कारमय दिव्य वाणियाँ छदो मे ही ढल कर आई,
जीवन-पथ को दिखलाने मे लगे छन्द उद्भासित होकर,
कवियो के औ' सम्राटो के स्निग्ध-मधुर सबध बन गये,
मानव-श्रम को मधुमय करने उत्सव रचे गये अति मनहर ।

गीतो के अधिपति है देव अपोलो, उनके और साथ ही
कलादेवि के प्रति, तुम लज्जा का अनुभव न करो निज मन मे
इसीलिये यह तुम्हे बताता ! सुनो श्रेष्ठ जो होती कविता
प्रकृति-कर्म या कलाकर्म है ? ग्रस्त अभी तक यह विवाद मे ।

मेरे मत से तो विदग्ध प्रतिभा वचित अध्ययन व्यर्थ है
और शक्ति भी शिक्षण से यदि है विहीन तो व्यर्थ स्वय मे,
अत सत्य है इन दोनो का चिर आश्रय-सम्बन्ध परस्पर
पूरक और सहायक होकर ये गुण चलते साथ-साथ मे ।

लक्ष्य-प्राप्ति को उत्सुक मन मे रगभूमि-क्रीडा प्रवीण जो
कुशल पुरुष है, उसने अपनी बाल्यावस्था तरुणाई मे
किया परिश्रम कठिन निरन्तर ऊष्मा-शीत अनेको झेले
वह कादम्ब-कामिनी तज कर रहा स्वेद-रत-सुघराई में,

जो कि प्यूथिग्रा के खेलो मे वेणु बजाता वह भी पहले
 सीख चुका है, गुरु के सम्मुख कम्प-नमित हो कला यत्न कर,
किन्तु काव्य के लिये लोग यह ग्रल समभते है कह देना—
 ग्रद्‌भुत कविताएँ रचता मै ग्रत खडा मै चिन्ता तज कर
मुझे पराजित कर दे कोई यह ग्रसह्य है मुझको निश्चय
 जिसको मैने कभी न सीखा, जो ग्रज्ञात मुझे है सच ही
उसको मै स्वीकार करूँ यह कभी नही मै सह सकता हूँ
 क्या न रुद्ध कर देता बिल्कुल यह सुधार का ग्रपना पथ ही ?

ज्यो विक्रेता है पुकार कर भीड बुलाता निज भाण्डो का—
 विक्रय करने, उसी भाँति कवि—भूमि ग्रौर सपद का स्वामी—
चाटुकार लोगो को करता ग्राकर्षित ग्रपने समीप है,
 लाभ, लाभ के लिये सदा वे भरते रहते उसकी हामी।

मूल्यवान यदि भोज एक दे सकता है या किसी दीन का
 बन कर प्रतिभू उसे छुडा सकता है कानूनी पजो से,
उसके धन को देख मुझे तो इस सब पर विस्मय ही होगा,
 ग्रच्छा कैसे परख सका वह ग्रपने उन नकली मित्रो से।

तब तो है वह चतुर कि ग्रपने ग्रच्छे मित्र ज्ञात है उसको,
 तुमने यदि दी भेट किसी को, या कि उसे हो देने वाले,
उसे बुलाग्रो मत निश्चय ही जब प्रसन्न है वह पहले से
 उसे सुनाग्रो मत निज कविता, धन उससे कुछ भी कहला ले।

'ग्रहा ! धन्य ! जय !' सभी कहेगा भाव-मग्न होगा, विवर्ण भी,
 रोयेगा हर्षाश्रु, पुलक भर नाचेगा, भू पर लोटेगा,
ग्ररे किराये पर जो रोते वे सदैव होते प्रवीण है—
 ग्रसली दुखियारे के दुख से कही ग्रधिक वे है दिखलाते।

इसी भाँति सच्चे जो होते वे इतनी न सुना पाते है
 झूठे स्तुतिकर्त्ता का ही स्वर सच्चे स्वर को भी घोटेगा,

धनी व्यक्ति जब योग्य मित्र को ढूँढा करते है जीवन मे
पहले लेते सतत परीक्षा उसको मदिरा ढाल पिलाते ।

यदि तुम कवि हो, तुम्हे न होगी देर भीतरी बात समझते
विगत काल की बात है कि जब क्विन्तिलिअन के समुख जाकर
कोई निज कविता पढता था, कहता था वह तब समझा कर
'एक विनय है, इसे ठीक कर ले औ' वह भी देखे फिर कर ।'

यदि कवि कहता था कि कर चुका वह प्रयत्न दो-तीन बार था
व्यर्थ हुआ श्रम, लाभ न निकला, तब वह क्विन्तिलिअन कहता था
काटो यह पक्तियाँ लचर है, और कसौटी पर फिर परखो ।
किंतु नही सुन यह सब, कवि जो दोषो की रक्षा करता था—
तो वह होता मौन, नही श्रम अपना करता नष्ट, कि ज्यो अब—
गले लगाओ निज को औ' निज कृतियो को तुम द्वन्द्व-विगत हो ।
सद्विवेकमय औ' सहृदय जो आलोचक होगा वह निश्चय
निर्बल छदो को टोकेगा, अनगढ को भी, त्वर आहृत हो ।

वह कुरूप पक्तियाँ छाँट कर, आडम्बरमय अलकार को
दूर करेगा, और साथ ही कुछ अस्पष्ट न रहने देगा ।
वह उभार सन्दिग्ध वाक्य को आवश्यक परिवर्तन बतला
सत्य कहेगा—स्वय एरिस्तारखस बन जायेगा, न रुकेगा ।

यह सोचेगा नही कि 'अपने सुहृद मित्र को यो क्यो रगडूँ—
इसमे क्या है ? चलने भी दो ! यह लघु दोष नही है दुर्भर ।'
यह लघुताएँ ही तो कवि को दुखद परिश्रम मे डालेगी
चाटुकारगण ने है जिसको मूर्ख बनाया स्तुति अनत कर ।

पाण्डुरोग, खुजली, पागलपन, राका-सन्निपात से पीडित
रोगी से ज्यो मानव बचते, उसी भाँति ही जागृत रहते—

बुद्धिमान उस पागल कवि से छूत मानते उसे त्यागते
जिसे छेडते तरुण, किन्तु है मूर्ख सदा ही सग विचरते।

यदि अपनी पक्तियाँ बोलता, चलता हो कवि शीश उठाये
(ज्यो व्याधा पक्षी निहारता) और खड्ड मे जा गिर जाये
फिर सहाय के लिये पुकारे, किंतु न कोई उस क्षण आये—
भला कौन हो सकता है जो उसको आकर वहाँ बचाये।

रज्जु फेकता हुआ निहारूँ यदि मै वहाँ किसी को, कह दूँ
'तुम्हे ज्ञात क्या, नही आप ही गिरा ध्येय लेकर यह मन मे ?
स्यात् नही चाहता कि इसकी की जाये रक्षा, यह सोचो।'
औ' सिसीलिया के कवि की मैं कथा सुनाऊँ उसे अत मे—
'था एम्पेदोक्लेस एक कवि, उसकी इच्छा हुई कि उसको
सभी देवता समझे, यो वह पूर्ण धैर्य मे आगे बढ कर
ऐतना की उन धू-धू करती ज्वालाओ मे जा कूदा था',
स्वेच्छा से हो कवि विनष्ट यदि उन्हे नाश लगता है प्रियतर।

जो कि किसी की इच्छा के विपरीत बचा लेना है उसको
हत्या ही करता है उसकी। क्योकि नही बस एक बार ही
करता वह यो। यदि अब तुमने उसे खीच भी लिया निकाला
वह अन्यो का-सा न बनेगा, नाटकीय इति की न चाह भी—
छोड सकेगा। कौन जानता क्यो वह छन्दो को रचता है,
या तो उसने कब्र पिता की खडित की है, या फिर उसने
किसी पवित्र शात सीमा का अतिक्रमण कर दिया कही पर
और जाति-च्युत हुआ (तभी वह रोक नही पाता स्वर अपने।)

अरे स्पष्ट है, वह पागल है, छूट कटहरे से निकला है
भालू, भीषण सुना-सुना कर कविता अपनी वह बढता है
विद्वानों मूर्खों को करता एक, स्वरो से कुचल चल रहा,
वह न किसी का ध्यान कर रहा वह तो मस्त हुआ चलता है।

एक बार भी यदि पकडेगा वह शिकार को, जा चिपटेगा,
कविता सुना-सुना कर उसकी हत्या ही कर देगा निश्चय,
जैसे जौक रक्त पीती है, नही छूटती, कभी न तब तक
जब तक फूल न गिर पडती है, यही हाल होगा नि सशय ।

सन्दर्भ-टिप्पणियाँ

१ **पिसो**

पूरा नाम ल्युसिग्रस कैलपर्नियस पिसो, कवि ग्रन्तिपेतर का सरक्षक। एक भीषण विद्रोह का दमन करने के लिए इसे थ्रेस बुलाया गया था, जहाँ इसे तीन वर्ष इस कार्य मे लगे। होरेस ने इसे और इसके पुत्रो को ही यहाँ सम्बोधित किया है।

२ **डायना**

एक रोमी देवी जिसका यूनानी अर्तेमिस से एकत्व है। डायना चिर-कुमारी थी। होमरोत्तर साहित्य मे उसका चन्द्रमा से एकत्व स्थापित हो गया है—अग्रेजी साहित्य मे उसका यह स्वरूप बहुधा दृष्टिगोचर होता है।

३ **एमिलियन प्रशिक्षण-शाला** फोरस के निकट स्थित एमीलियस लेपीदस नाम के किसी व्यक्ति द्वारा निर्मित एक प्रशिक्षणालय।

४ **कैथेजी**—यहाँ तात्पर्य पुरानी पद्धति के अनुयायियो से है। कैथेगस २०४ ई० पू० में राजकीय मन्त्रणाकार थे। यूनान और पूर्व से आचार-व्यवहार और वेश-भूषा की नवीनताओ का आयात होने से पूर्व वे विद्यमान थे—अत पुरातनप्रियता का इगित करने के लिए यहाँ उनका उल्लेख किया गया है।

५ **कैसिलियस** (२१९-१६६ ई० पू०) .

रोम मे अपने समय का प्रमुख कामदीय नाटचकार। वह एनिग्रस का मित्र था। सेदिगितुस ने रोमी कामदीकारो मे उसे सर्वप्रथम स्थान दिया है।

६ **प्लौतुस** (२५४-१४८ ई० पू०)

रोमी रगमच की सर्वाधिक मौलिक प्रतिभा। कामदीय नाटचकारो मे प्लौतुस मोलिये और अरिस्तोफनेस के स्तर का लेखक है। उसकी प्रतिभा

नाट्यकार टेरेंस और मेनान्दर से उत्कृष्ट है परन्तु उसमे वैसे परिष्कार का अभाव है। उसका हास्य जानदार होता है।

७ वर्जिल (७०-१९ ई० पू०)

लेटिन का मूर्धन्य कवि। होरेस का मित्र। साहित्य-सृजन के क्षेत्र मे वर्जिल थेओक्रितुस, हेसिओद और होमर का ऋणी है, पर उसने अन्धानुकरण इनमें से किसी का भी नही किया। लेटिन के षट्पदी छन्द को वर्जिल ने साँचे में ढालकर उदात्त भावाभिव्यक्ति का माध्यम बनाया, जिसका सौष्ठव अप्रतिम है। लेटिन कविता में वर्जिल की स्थिति वही है जो गद्य मे सिसेरो की। वर्जिल की लोकप्रियता उसके अपने युग से आज तक सर्वोपरि रही है।

८ वैरियस (७४-१४ ई० पू०) :

आगस्टस-युग के लेटिन कवियो में अग्रणी। होरेस और वर्जिल का मित्र। वर्जिल की मृत्यु के पश्चात् वैरियस ने उसकी अपूर्ण कृति 'अयेनेइमद' का सम्पादन किया था।

९ कैटो (२३४-१४९ ई० पू०)

रोमी गद्य का प्रवर्तक। वह ग्रीक सभ्यता के प्रभाव का घोर विरोधी था। इतिहास, वक्तृता और प्राविधिक विषयो की दृष्टि से कैटो की बडी महत्ता है। भाषणकर्त्ता के लिए उसका महत्वपूर्ण सूत्र था 'भाव पर अपना ध्यान केन्द्रित रखो, शब्द स्वय आयेंगे।'

१० एनियस

आदि रोमी कवियो मे सबसे महान्। एनिअस की प्रतिभा बहुमुखी थी। उसने साहित्य का कोई भी क्षेत्र अछूता नही छोडा, परन्तु त्रासदी के क्षेत्र मे उसने विशेष सफलता पाई। क्विनतिलियन ने उसके काव्य के विषय मे कहा है कि वह पुरातन वृक्ष की भाँति है जिसमे सौन्दर्य की अपेक्षा गरिमा अधिक होती है।

११ होमेरस (होमर) ·

'ईलिअद' (इलियड) तथा 'ओद्युस्सेइआ' (ओडिसी) नामक महाकाव्यो का प्रणेता अन्यतम यूनानी कवि। जीवन-काल सदिग्ध। अब तक के

शोध के आधार पर अनुमानत ई० पू० ६वी शताब्दी के मध्य मे वह विद्यमान था। वह विलक्षण अन्तर्दृष्टि से सम्पन्न, मानव-मन की सूक्ष्मतम अनुभूतियो का अद्वितीय व्याख्याकार था। उसकी गणना विश्व के सर्वोत्कृष्ट कवियो मे होती है।

१२ **आर्खिलोकस**.

यह ७वी शती ई० पू० मे विद्यमान था। इस की गणना श्रेष्ठ मौलिक कवियो मे की जाती है। एक कुशल योद्धा होने के नाते इसने अपने शोकगीतो में योद्धाओ का प्रशस्ति-गायन किया है। इस की ख्याति आयम्बिक छन्द के विशिष्ट प्रयोग पर आधृत है।

१३ **थ्युएस्तेस**

वैरियस-कृत त्रासदी जिसके प्रमुख पात्र का नाम भी यही है। पुराण-गाथाओ के अनुसार यह अत्रेउस का भाई था। अत्रेउस से इसका वैमनस्य था क्योकि उसकी पत्नी एरोपे के साथ थ्युएस्तेस का अवैध सम्बन्ध था। अत्रेउस ने उससे समझौते का बहाना किया और उसके उपलक्ष मे जो भोज दिया उसमे थ्युएस्तेस के पुत्रो का मास परोसा गया।

१४ **ख्रेमेस**

टेरेंस की नाट्य-कृति 'यूनखस' का एक पात्र। टेरेस की कामदियो मे वृद्ध पात्रो को कई जगह यह नाम दिया गया हे।

१५ **तेलेफुस**

हेराक्लेस और अउगे का पुत्र। धर्मस्थान मे प्रसव होने के कारण उसके नाना राजा अलेउस ने उसे फिकवा दिया और अउगे को अन्यत्र विक्रय के लिए दे दिया। वह राजा तेउथ्रास की पत्नी बनी। कालान्तर मे तेलेफुस भी बडा होकर वही पहुँचा और सयोग की बात कि उसका विवाह अपनी माता से होने वाला ही था कि उनका सम्बन्ध प्रकट हो गया। बाद मे तेलेफुस म्युसिआ का राजा हो गया। यूनानी सेना ने जब त्रॉय पर अभियान किया तो मार्ग में उसकी राजधानी को त्रॉय समझकर उस पर आक्रमण किया। तेलेफुस ने युद्ध किया, वह अखिल्लेस के द्वारा घायल हुआ और बाद में उसी के उपचार से स्वस्थ हो गया।

१६ पेलेउस

यूनानी पुराण-कथाओ के अनुसार ऐआकुस का पुत्र। इसने अपने सौतेले भाई का वध कर दिया था जिसके कारण इसके पिता ने इस का निष्कासन कर दिया। फ्थिआ पहुँचने पर एउर्यु तिओन ने इसे पापमुक्त करके अपनी पुत्री से इसका विवाह कर दिया। परन्तु एक बार दुर्भाग्यवश शिकार खेलते समय इससे गलती से एउर्यु तिओन की हत्या हो गई, तब इसका पुन निष्कासन किया गया।

१७ कोल्चिआई—यहाँ होरेस का मन्तव्य बर्बरता एव अशिष्टता का द्योतन करने से है।

१८ असीरियाई—यहा तात्पर्य विलास-वैभव में पले किसी पौरस्त्य व्यक्ति से है।

१६ थेबेस—
२०. आरगौस— } दो नगरो के नाम।

यहाँ इनका वैषम्य होरेस किस दृष्टि से रेखाकित करना चाहते हैं, यह स्पष्ट नही।

२१ अखिल्लेस

पेलेउस का पुत्र तथा त्रौइआ-युद्ध का सर्वप्रमुख योद्धा। अखिल्लेस को उसकी माँ ने शैशव में पवित्र नदी में स्नान कराया था जिसके फलस्वरूप उसका समस्त शरीर अभेद्य हो गया था। केवल उसकी एडी का वह भाग जहाँ से उसकी माँ ने उसे पकड रखा था, नदी के जल मे न डूबने के कारण दुर्बल रह गया। इसी एडी पर आघात होने से उसकी मृत्यु हुई। त्रौइआ-युद्ध में प्रारम्भ में अपमान होने के कारण उसने लडना अस्वीकार कर दिया था पर अन्त मे क्रुद्ध हो उसने समस्त शत्रुदल का विनाश कर डाला। होमेरस (होमर) के प्रसिद्ध काव्य 'ईलिअद' का नायक अखिल्लेस ही है।

२२ मेदेआ·

यूनानी पुरागाथाओ मे उल्लिखित कोलखिस के शासक की पुत्री जो जादूगरनी थी। कोलखिस-आगमन पर जेसन मेदेआ के प्रणय-पाश में आबद्ध हो गया। मेदेआ के सहयोग से जेसन उसके पिता द्वारा उपस्थित सभी

व्यवधानो को पराजित कर मेदेग्रा को अपने देश ले गया। तत्पश्चात् दोनो को किसी कारणवश कोरिन्थ पलायन करना पडा जहाँ जेसन ने किसी राजकुमारी के प्रति आसक्त होकर मेदेग्रा का परित्याग कर दिया। प्रतिशोध की ज्वाला से सतप्त होकर मेदेग्रा ने अपने दोनो पुत्रो और ग्लाउसी—राजकुमारी—का वध कर दिया। फिर उसने थेसिग्रस का अपने पिता पर प्रभाव न पडे, इसलिए उसे विष देने का षड्यन्त्र रचा। अन्त मे वह भागकर एशिया चली गई। वह एउरिपिदेस की एक त्रासदी की प्रमुख पात्री है।

२३. ईनो

कादमस की पुत्री और अथमस की विवाहिता पत्नी।

२४. इक्सिग्रोन

यह थ्रेस का निवासी था। इसने दिग्रा से विवाह किया किन्तु वधू का मूल्य माँगने पर इसने उसके पिता को छल द्वारा प्रज्वलित अग्नि-कुण्ड मे डलवा दिया। पातक से मुक्ति प्राप्त करने के लिए यह जेउस की शरण मे गया किन्तु वहाँ हेरा का शीलभ्रष्ट करने के दण्डस्वरूप इसे पाताल में जलते पहिये के साथ बाँध दिया गया।

२५ ईग्रो

यूनानी पुराण-गाथाग्रो के अनुसार हेरा की पुरोहितानी। जेउस इससे प्रेम करता था परन्तु हेरा से गुप्त रखने के लिए उसने इसे गाय बना लिया था, फिर भी हेरा के द्वारा उसमें भाँति भाँति की बाधाएँ उत्पन्न की गई। अन्त मे जब वह भटकती हुई मिस्र पहुँची तब जेउस ने उसे अपने हाथ के स्पर्श से वास्तविक रूप प्रदान किया और उससे ईग्रो को पुत्र की प्राप्ति हुई।

२६ ग्रोरेस्तेस

अगमेमनोन और क्ल्युतेम्नेस्त्रा का पुत्र, ईफिगेनिग्रा का भाई। क्ल्युतेम्नेस्त्रा और ऐगिस्थस ने मिलकर अगमेमनोन की हत्या कर दी। ग्रोरेस्तेस किसी तरह अपनी माँ के हाथ से बच निकला। इसका पालन-पोषण इसके चाचा ने अपने पुत्र के साथ किया। बडे होकर ग्रोरेस्तेस ने अपनी पिता के हत्यारे तथा अपनी माँ दोनो को मार डाला। मातृहत्या के दोष की निवृत्ति के लिए एक देवदूत ने निर्देश किया कि 'अर्तेमिस' की मूर्ति यूनान लाने से उसकी पाप-मुक्ति हो सकेगी।

२७ ईलिग्रद · होमर-विरचित प्रख्यात महाकाव्य जिसकी गणना ससार के उत्कृष्टतम महाकाव्यो मे होती है।

२८ प्रिग्रम ट्रॉय का अन्तिम नरेश। होमर के अनुमार इसके पचास पुत्र पुत्रियाँ थी जिनमें हेक्तोर, पेरिस, कैसान्द्रा आदि अधिक प्रसिद्ध हैं। हरकुलेस प्रिग्रम की बहिन का अपहरण करके यूनान ले गया था, उसे वापस लाने के लिए प्रिग्रम ने जो अभियान किया उसका नेतृत्व पेरिस को सौपा था। पेरिस पिता की आज्ञा की उपेक्षा कर हेलेन को ट्रॉय भगा लाया जिसके फलस्वरूप प्रसिद्ध ट्रॉय-युद्ध हुआ। ट्रॉय-पतन के बाद अखिल्लेस के पुत्र ओप्तोलेमस ने प्रिग्रम का वध किया था।

२६ अन्तिफतेस यहाँ (और आगे के कुछ सन्दर्भो मे) होरेस ने ओद्युस्सेइआ की कथाओ की ओर सकेत किया है। अन्तिफतेस नरभक्षी राजा था जिसका उल्लेख १०वे ग्रन्थ मे आया है।

३० क्युक्लोप्स (चक्राक्षि) [ग्रीक० क्युक्लोस-चक्र, ओप्स-अक्षि] .

एक विशेष दैत्य-जाति जिसके माथे के बीच में केवल एक आँख हुआ करती थी।

३१ स्क्युल्ला

एक जलपरी जिससे पोसेइदोन प्रेम करता था। अम्फित्रिते ने ईर्ष्यावश जहाँ स्क्युल्ला स्नान करती थी वहाँ कुछ ऐसी जादू की ओषधियाँ रख दी जिनके कारण उसका शरीर एक भीषण दैत्य का-सा हो गया। उसके पश्चात् वह नाविको के लिए भय का कारण बन गई क्योकि वह उधर से गुज़रने वाले नाविको को पकडकर खाने लगी।

३२ खार्युबदिस ·

सिसिली के तट पर, मेसिना की खाडी मे स्क्युल्ला के बिल्कुल सामने पडने वाला एक भीषण जलभँवर। कहते हैं खार्युबदिस एक अत्यन्त धनलिप्सु नारी थी जिसने हरकुलेस के बैल चुरा लिए थे। इस चौर कर्म से क्रुद्ध होकर जेउस ने उस पर वज्र-प्रहार किया और वह एक जल-आवर्त के रूप मे परिणत हो गई।

३३ दियोमेदेस

ट्रॉय-युद्ध का एक प्रमुख योद्धा। ओद्युरसेइआ के साथ मिलकर इसने अनेक साहसिक कार्य सम्पन्न किए। त्रौइआ से लौटने के पश्चात् उसे ज्ञात हुआ कि उसकी पत्नी आएगिआलिआ विश्वासघातिनी है। तब वह इटली चला आया। उसकी मृत्यु पर उसे वीरोचित सम्मान की प्राप्ति हुई।

३४ मेलेअजेर

यह कैलिदोन के राजा ओनिउस और अथेलिया का पुत्र था। उसके जन्म के अवसर पर भविष्यवाणी की गई थी कि वह असाधारण रूप से शक्तिमान और पराक्रमी होगा। अत्रोपोस ने घोषित किया कि जब तक एक विशेष लकडी, जो उस समय अग्नि में थी, जलती रहेगी, वह आपदाओ से मुक्त रहेगा। यह सुनकर उसकी माँ ने वह लकडी उठा ली और सँभाल कर रख ली। जब इसने एक रीछ के शीश के लिए अपने मामाओ से झगडा हो जाने पर उनका वध कर दिया, तो अपने भाइयो के शोक मे विह्वल होकर उसकी माॅ अथेलिया ने वह लकडी जलती हुई अग्नि मे डाल दी। जब वह जलकर निश्शेष हो गई तो इसके जीवन का भी अन्त हो गया।

३५ अत्रेउस·

यूनानी पुराण-कथाओ के अनुसार यह थ्युएस्तेस का भाई था। अत्रेउस से उसका वैमनस्य था क्योकि इसकी पत्नी एरोपे के साथ उस का अवैध सम्बन्ध था। अत्रेउस ने उससे समझौते का बहाना किया और उसके निमित्त जो भोज दिया उसमे थ्युएस्तेस के पुत्रो का मास परोसा गया।

३६ प्रोकने.

अथेनी राजा पनदिओन की दो पुत्रियो में से एक—प्रोकने—थ्रेस-नरेश तेरेउस को ब्याही थी। तेरेउम ने प्रोकने के मर जाने की अफवाह उडाकर दूसरी पुत्री फिलोमेला को भेजने की प्रार्थना अथेन्स नरेश से की। उसके आ जाने पर तेरेउस ने उसके साथ बलात्कार किया, फिर उसकी जीभ काट दी ताकि वह किसी को अपनी करुण कथा न सुना सके। इसका प्रतिशोध लेने के लिए प्रोकने ने तेरेउस को भोजन में विष देने का प्रयत्न किया परन्तु उसे किसी तरह यह भेद ज्ञात हो गया। इस पर उसने दोनो बहनो को दण्ड देना चाहा परन्तु देवताओ ने उन तीनो को ही पक्षियो में परिणत कर दिया।

३७ कादमस •

ट्युरे-नरेश अगेनोर का पुत्र। वृद्धावस्था मे यह और इसकी पत्नी हरमोनिया इल्युरिया चले गए थे और बाद मे सर्पो मे परिणत हो गए थे।

३८ देल्फी की आप्तवाणी

देल्फी फोसिस मे परनासस पर्वत के दक्षिण-पश्चिमी ढाल पर स्थित है जहाँ अपोलो का एक मदिर भी है। अपोलो की एक पुरोहितानी प्युथिआ यहाँ भविष्यवाणी करती थी। जो लोग यहाँ कुछ जानने-पूछने आते थे वे अपार धनराशि भेट के रूप मे मदिर को देते थे। इसी कारण मदिर का कोष अक्षय था। ८-५ शती ई० पू० के बीच इस मदिर का प्रभाव बडा व्यापक रहा।

३९ सिलेनुस

यूनानी देवता बैकस का प्रख्यात शिक्षक। यद्यपि कथाओ में उसे मद्योन्मत्त विदूषक के रूप मे चित्रित करने की रूढि बन गई है, तथापि उस की कल्पना एक उद्भट विद्वान के रूप मे ही की जाती है, और यहाँ होरेस का अभिप्राय उसके इसी दूसरे रूप से है।

४० अक्किअस :

अन्तिम तथा महान्‌तम रोमी त्रासदीकार। यद्यपि प्राचीन लेटिन कवियो के लिए होरेस के मन में कोई प्रशसा-भाव नही था, तथापि अक्किअस का स्मरण अन्यत्र उसने 'उदात्त' विशेषण से किया है। ओविड एव सिसेरो ने त्रासदीकार के रूप मे उसकी अत्यन्त प्रशसा की है। उसकी कई कृतियो के अश अब भी उपलब्ध हैं।

४१ थेसपिस

थेसपिस आदि त्रासदीकार था अनेक विद्वान होरेस की इस स्थापना से सहमत नही हैं। त्रासदी के उद्भव के प्रसग मे अरस्तू ने उस का नामोल्लेख नही किया है। बुअलो ने होरेस का प्रमाण ग्रहण करके तथा गोल्डस्मिथ ने बुअलो के प्रभाव-से इसे ही आदि त्रासदीकार माना है।

४२ ऐस्ख्युलस

प्रसिद्ध अथेनी त्रासदीकार। जन्म-काल अनुमानतः ५२५ ई० पू०। ४८४ ई० पू० मे त्रासदी-प्रतियोगिता में इसने प्रथम पुरस्कार पाया और

४६८ ई० पू० मे इसी प्रतिद्वन्द्विता मे सोफोक्लेस से हार जाने पर अथेन्स छोड दिया। इसने त्रासद नाटच-रचना और अभिनय मे ऐसे महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किये कि इसे त्रासदी का जन्मदाता कहा जाता है। इसने अभिनेताओ की वेश-भूषा भव्यतर बना दी और छद्ममुख अभिनीत पात्र के अनुकूल बनाने का प्रयत्न किया। ऐस्ख्युलस-विरचित त्रासदियो की सख्या ७० बताई जाती है परन्तु उपलब्ध केवल ७ हैं। ऐस्ख्युलस की ऊर्जस्वी शैली मे विशेषण और अलकारो की अद्भुत छटा मिलती है।

४३ नूमा :

पिसो स्वय को न्यूमा पौम्पिलिउस की वश-परम्परा से सम्बद्ध करने मे गौरव का अनुभव करता था।

४४ दिमोक्रितुस (४६० ई० पू०)

अबदेरा का एक अत्यन्त सम्पन्न दार्शनिक-नागरिक। उसका दृढ विश्वास था कि बिना अन्त प्रेरणा के कोई भी महान् कवि नही हो सकता। उसके देश-विदेशाटन की कथाएँ विविध सूत्रो से उपलब्ध होती हैं। कहते हैं वह अथेन्स भी गया था जहाँ सुकरात से उसकी भेट हुई थी। अपने जीवन-काल मे ही अपने अगाध ज्ञान के कारण उसका नाम 'प्रज्ञा' पड गया था और बाद में 'विहसित दार्शनिक' कहकर उसका उल्लेख किया गया है। अरस्तू ने उसके विचारो का काफी सम्मान किया है। सिसेरो ने अलकृति, गतिमत्ता और प्रसादत्व के कारण उसकी शैली की प्रशसा की है।

४५ हेलीकोन .

बोयोतिया का सबसे बडा पर्वत। एक आयोनी मन्दिर, रगशाला, कला की देवियो की मूर्तियाँ आदि यहाँ उपलब्ध हैं। यहाँ तात्पर्य परम कलात्मक सिद्धि की ओर जाने वाले मार्ग से है।

४६ अन्तिक्युरस .

शारीरिक एव मानसिक दोनो प्रकार की चिकित्साओ के लिए लोग फोसिस मे अन्तिक्युरस के पास एकत्रित होते थे।

४७. सोक्रतेस (सुकरात)—(४६८-३८८ ई० पू०)

महान् यूनानी दार्शनिक। सुकरात के विरुद्ध भ्रष्टाचार का आरोप लगाकर उन्हे विषपान का दड दिया गया था। सुकरात ने लिखा कुछ भी नही

परन्तु उनकी शिक्षा की सामान्य विधि और प्रवृत्ति 'प्लेटो के सवादो' में सुरक्षित है। सामान्यत सुकरात की शिक्षा-पद्धति यह थी कि वे अपनी ओर से कुछ प्रश्न प्रस्तुत करते थे और उनके उत्तरो का विश्लेषण करते हुए निष्कर्ष ग्रहण करते थे।

४८ खोएरिलस

ऐस्ख्युलस, सोफोक्लेस और एउरिपिदेस से पूर्व के उल्लेखनीय यूनानी त्रासदीकारो मे खोएरिलस का भी नाम आता है। खोएरिलस हेरोदोतस का मित्र था। खोएरिलस की महत्ता यह है कि उसने पौराणिक विषय के बजाय ऐतिहासिक विषय—ईरानी युद्धो—को लेकर महाकाव्य की रचना की। खोयरिलस के सम्बन्ध मे विशेष जानकारी प्राप्त नही। होरेस ने उसका स्मरण प्रशसात्मक भाव से नही किया वरन् ऐसे कुकवियो मे उसकी गणना की है जो यदा-कदा एकाध अच्छी पक्ति लिख लेते हैं।

४९ मेस्साला :

प्राचीन रोमी अभिजात-तन्त्र का एक सदस्य जिसने फिलिपी मे रिपबलिकन-पक्ष की ओर से युद्ध में भाग लिया था। वह प्रतिष्ठित वक्ता और लेखक था और साहित्यकारो के एक मडल का सरक्षक था। टेसीटस और क्विनतिलियन दोनो ने उसकी बडी प्रशसा की है।

५० कसेलियस

यह अपने समय का यशस्वी अधिवक्ता था परन्तु इसके सम्बन्ध मे विस्तृत जानकारी प्राप्त नही।

५१ मायसिउस

नाट्य-उपस्थापन की अनुमति देने वाला अधिकारी जो स्वभावत नाट्य-कला का अच्छा ज्ञाता होता था।

५२ ओरफेउस

एक थ्रेस-वासी कवि जो सभ्यता के आदि सस्थापको में परिगणित होता है। उसके विषय मे यह प्रचलित है कि वह वृक्षो, शिलाओ और पशुओ को मन्त्रमुग्ध करने की क्षमता से सम्पन्न था। वर्जिल द्वारा वर्णित एक दन्त-कथा

के अनुसार उसने एउरिदिसे को हेदेस से उसकी पत्नी इस शर्त पर वापस दिलवाने का वचन दिया कि वह पीछे मुड कर नही देखेगा कि उसकी पत्नी आ रही है या नही। शर्त न निभा सकने के कारण एउरिदिसे को अपनी पत्नी खो देनी पडी।

५३ अम्फीओन .

जेउस और अन्तिओपे का पुत्र। हरमेस ने इसे एक वशी दी थी, इस वशी वादन में वह इतना कुशल हो गया था कि कहते हैं जब यह और इसका भाई जेथुग्ग थेबेस की रक्षा करने के लिए प्राचीर तैयार कर रहे थे तो प्रस्तर-खड स्वय गति धारण कर एकत्रित हो गये और प्राचीर के रूप में परिणत हो गये।

५४. त्युरतएउस (६८० ई० पू०)

एक लॅगडा अध्यापक जिस की ओजस्वी रचनाएँ स्पार्तावासियो को युद्ध के लिए प्रेरित करती थी। उस के कतिपय जीवन्त युद्ध-गीत अब भी उपलब्ध हैं।

५५. अपोलो

यूनानी देवता, दूसरा नाम फोएबस। इन्हे प्राय. सूर्य का प्रतिरूप माना गया है। वे सगीत एव काव्य के भी देवता माने गये हैं। वे भविष्य-ज्ञान की शक्ति से सम्पन्न थे, अत उनकी भविष्यवाणियो का बडा सम्मान था।

५६ क्विनतिलियन

वर्जिल का मित्र, सभवत. इसी के माध्यम से होरेस का परिचय वर्जिल से हुआ था। उसकी याद मे हारेस ने एक मार्मिक कविता लिखी थी।

५७. अरिस्तारखस ·

ई० पू० दूसरी शती मे अलैक्जैड्रिया का आलोचक, होमर के पाठानुसन्धान का श्रेय इसी को है। वह वैज्ञानिक विद्वत्ता का आदि सस्थापक माना जाता है, ठीक वैसे ही जैसे ओरिगा वैज्ञानिक पाठानुसन्धान का।

६८ ऐम्पेदोक्लेस (५वी शती ई० पू०) .

एक दार्शनिक जिसके मतानुसार विश्व के समस्त तत्त्व केवल दो विरोधी

शक्तियो द्वारा शासित हैं—प्रेम और घृणा। लुक्रेतियस के अनुसार वह सिसली का सर्वाधिक पवित्र, विलक्षण और अमूल्य व्यक्ति था। होरेस ने कवि-रूप में उसका इसलिए स्मरण किया है कि अपने पूर्वकथनो के लिए वह पद्य के माध्यम का उपयोग करता था।